विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१४ सितम्बर—१९९५ अंक—९

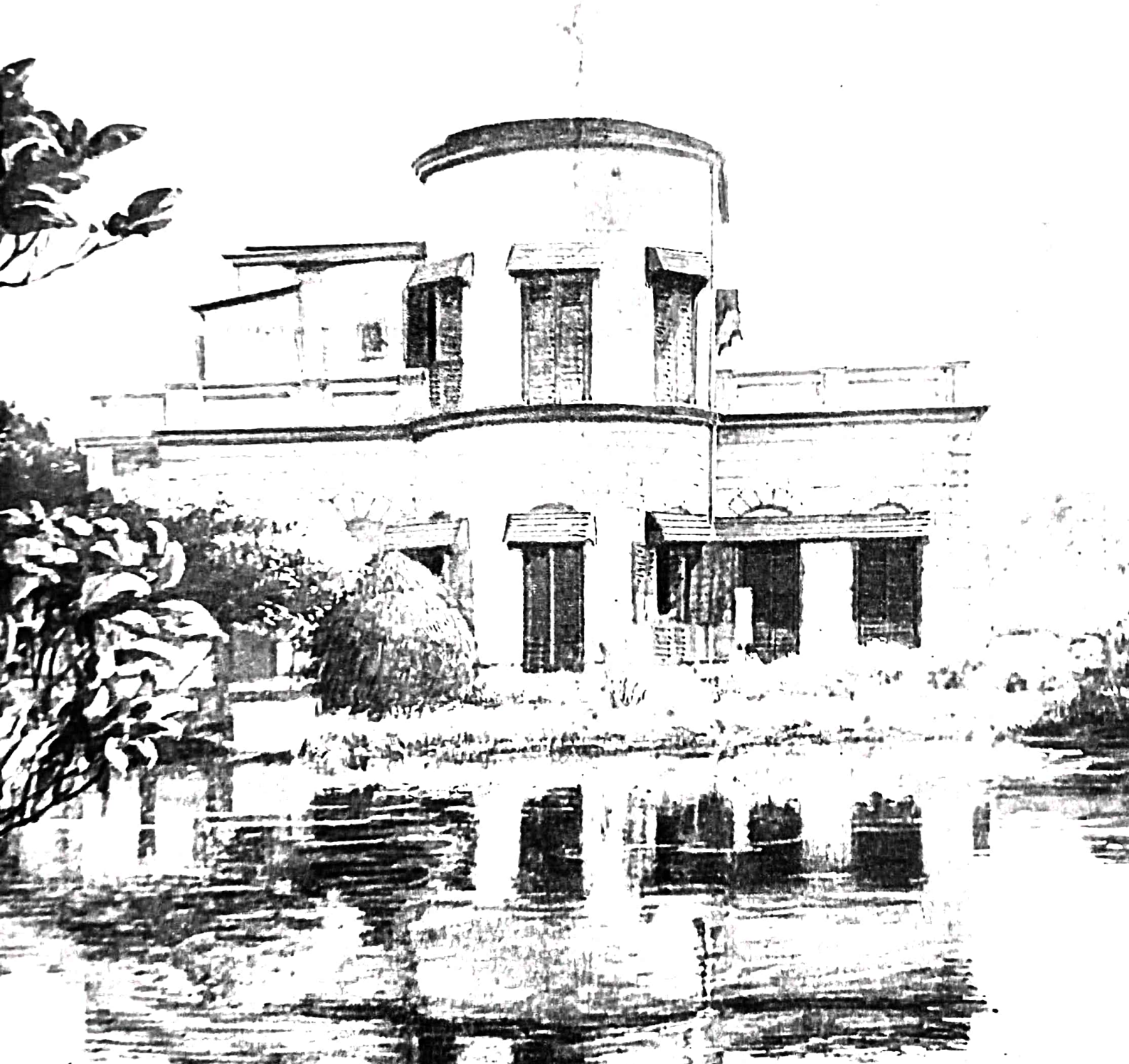

रामकृष्ण निलयम, [illegible] प्रकाशन [illegible], छपरा-८४१ ३०१ (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

११६. श्रीरामचन्द्र गुप्त, लुमडिंग (आसाम)
११७. श्री चन्द्रकान्त म० नागपुरे (नागपुर)
११८. श्री अच्छे लाल श्रीवास्तव (उ० प्र०)
११९. संत जगदम्बिका (प्रयाग)
१२०. श्री अजय बलदवा, जयपुर (आसाम)
१२१. श्री बी० एस० दुबे, पुणे (महाराष्ट्र)
१२२. श्री बालीराम शर्मा, लुमडिंग (आसाम)
१२३. श्रीमती चन्द्रिका कालरा (बम्बई)
१२४. श्रीरामकृष्ण आश्रम, श्रीनगर (कश्मीर)
१२५. श्रीमती छवि सिंह, गाजीपुर (उ० प्र०)
१२६. विवेकानन्द युवा महामंडल, इन्दौर (म० प्र०)
१२७. श्री आनन्द यश चोपड़ा, अलांग (अरुणाचल प्रदेश)
१२८. सुश्री सेजल क० मान्डवीय, जूनागढ़ (गुजरात)
१२९. श्री विजय कुमार रामसेवक गुप्ता, नागपुर
१३१. श्री जी. के. दीक्षित, बरोदा (गुजरात)
१३२. श्री सत्य प्रकाश लाल, वाराणसी (उ. प्र.)
१३३. श्री पूनम चन्द्र जैन—लुमडिंग (आसाम)
१३४. श्री राम आसरा वासुदेव—लुमडिंग (आसाम)
१३५. नार्थ कछार टिम्बर प्रोडक्ट्स—मंडेरदिशा (आ०)
१३६. श्री ओम प्रकाश अग्रवाल—लंका (आसाम)
१३७. श्री महेश गुरुवारा—लुमडिंग (आसाम)
१३८. श्री भोलानाथ उपाध्याय—लुमडिंग (आसाम)
१३९. श्री अमुभाई पटेल—बड़ोदा (गुजरात)
१४०. श्री रामभगत सेमका—मद्रास
१४१. श्री रूपाराम—जोधपुर (राजस्थान)
१४२. महावीर बाल वाचनालय—चन्द्रावल नगर (राज०)
१४३. श्री कृष्ण मलहोत्रा—नई दिल्ली
१४४. श्री गुलशन चावला—दिल्ली
१४५. श्री आर० के० ग्रोवर—नई दिल्ली
१४६. श्री राकेश रेलहन—नई दिल्ली
१४७. श्री जयप्रकाश सिंह—कलकत्ता
१४८. श्री गंगाधर मिश्र—एन० सी० हिल्स
१४९. श्री बी० बी० शेरपा—लुमडिंग (आसाम)
१५०. श्री शंकर लाल अगरवाल—नगांव (आसाम)
१५१. श्री रामगोपाल सेमका—कलकत्ता
१५२. श्रीमती शान्ति देवी—इन्दौर (म० प्र०)
१५३. श्री जगदीश बिहारी—जयपुर (राजस्थान)
१५४. डॉ० गोविन्द शर्मा—काठमांडू (नेपाल)
१५५. श्री विजय कुमार मल्लिक—मुजफ्फरपुर
१५६. सुश्री एस. पी. त्रिवेदी—राजकोट (गुजरात)
१५७. श्रीमती गिरिजा देवी—बखरिया (बिहार)
१५८. श्री अशोक कौशिक—मालवीय नगर, नयी दिल्ली
१५९. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ—देवघर (बिहार)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. श्रीभवान्यष्टकम्	श्रीशंकराचार्य	२
३. भगवान श्रीकृष्ण का सन्देश	स्वामी विवेकानन्द	३
४. प्राच्य का पाश्चात्य को सन्देश	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	५
५. मेरी अमरनाथ यात्रा	मुसाफिर	१०
६. शरण तुम्हारी आया हूँ (कविता)	मोहन सिंह मनराल	१८
७. ध्याननिष्ठ जीवन की अनिवार्य शर्तें	स्वामी यतीश्वरानन्द	१९
८. देवलोक	स्वामी अपूर्वानन्द	३०

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा का एकमात्र हिन्दी मासिक

वर्ष—१४ सितम्बर—१९९५ अंक—९

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

सम्पादक :
डॉ० केदारनाथ लाभ
सहायक सम्पादक
शिशिर कुमार मल्लिक

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-४२५३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	४० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	५० रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

तुम्हें रुपये की ओर इस दृष्टि से देखना चाहिए कि उससे दाल-रोटी मिलती है, पहनने के लिए कपड़ा और रहने के लिए मकान मिलता है, ठाकुरजी की पूजा और साधु-भक्तों की सेवा होती है। परन्तु धन-संचय करना व्यर्थ है। मधुमक्खियाँ कितनी मेहनत से छत्ता तैयार करती हैं, पर कोई दूसरा ही आदमी आकर उसे तोड़ ले जाता है। स्त्री का पूरी तरह त्याग तुमलोगों के लिए नहीं है। परन्तु लड़के-बच्चे हो जाने पर पति-पत्नी को भाई-बहन की तरह रहना चाहिए।

(२)

धान के भीतर जो चावल होता है उसी से अंकुर पैदा होता है, बाहरी भूसी से नहीं, परन्तु फिर भी सिर्फ चावल बोने से अंकुर नहीं निकलता, फसल के लिए धान ही बोना पड़ता है, फसल आ जाने के बाद भले ही धान में से भूसी हटाकर सिर्फ चावल का ही उपयोग किया जाता है। उसी प्रकार धर्म विकसित होने और बने रहने के लिए आचार-विचार, विधि-नियम आदि आवश्यक हैं। ये मानो कवचस्वरूप हैं। इस कवच के भीतर सत्य का बीज निहित होता है। जब तक मनुष्य को उनके अन्तर्निहित सत्यवस्तु की प्राप्ति न हो जाए तब तक उसे इन बाह्य आचार-नियमों का पालन करते रहना चाहिए।

(३)

भगवान् को तुम एक गुना जो कुछ अर्पित करोगे, उसका हजार गुना पाओगे। इसीलिए सब कार्य करने के बाद जलांजलि दी जाती है—श्रीकृष्ण को फल-समर्पण किया जाता है।

श्रीभवान्यष्टकम्

—श्री शंकराचार्य

न तातो न माता न बन्धुर्न दाता
न पुत्रो न पुत्री न भृत्यो न भर्ता।
न जाया न विद्या न वृत्तिर्मवैव
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥१॥

भवाब्धावपारे महादुःखभीरुः
प्रपन्नः प्रकामी प्रलोभी प्रमत्तः।
कुसंसारपाशप्रबद्धः सदाऽहं
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥२॥

न जानामि दानं न च ध्यानयोगं
न जानामि तन्त्रं न च स्तोत्रमन्त्रम्।
न जानामि पूजां न च न्यासयोगं
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥३॥

न जानामि पुण्यं न जानामि तीर्थं
न जानामि मुक्तिं लयं वा कदाचित्।
न जानामि भक्तिं व्रतं वापि मात—
र्गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥४॥

कुकर्मी कुसंगी कुबुद्धिः कुदासः
कुलाचारहीनः कदाचारलीनः।
कुदृष्टिः कुवाक्य प्रबन्धः सदाहं
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥५॥

प्रजेशं रमेशं महेशं सुरेशं
दिनेशं निशीथेश्वरं वा कदाचित्।
न जानामि चान्यं सुराणां शरण्ये
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥६॥

विवादे विषादे प्रमादे प्रवासे
जले वानले पर्वते शत्रुमध्ये।
अरण्ये शरण्ये सदा मां प्रपाहि
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥७॥

अनाथो दरिद्रो जरारोगयुक्तो
महाक्षीणदीनः सदा जाड्यवक्त्रः।
विपत्तौ प्रविष्टः प्रणष्टः सदाहं
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि ॥८॥

□

भगवान श्रीकृष्ण का सन्देश

—स्वामी विवेकानन्द

श्रीकृष्ण की एक महान् शिक्षा है। गीता का उपदेश है—कार्यरत् रहो, रात-दिन करते रहो। स्वभावत: यह शंका उपस्थित होगी कि निरन्तर कर्म से शान्ति कैसे उपलब्ध होगी? यदि मनुष्य दिन-रात, आमरण, अश्व की भाँति जीवन की गाड़ी खींचता रहे और उसे खींचते ही इहलीला समाप्त कर दे, तो मानव जीवन का मूल्य ही क्या रहा? भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—नहीं, कर्मरत व्यक्ति अवश्य शान्ति का अधिकारी बनेगा। कार्यक्षेत्र से पलायन करना शान्ति का पथ नहीं है। यदि संभव हो, तो अपने कर्त्तव्य-कर्म छोड़ दो तथा किसी पर्वतशिखर पर जीवन यापन करो; किन्तु वहाँ भी मन स्थिर नहीं रहेगा, वहाँ भी वह यन्त्रवत् भ्रमण करता रहेगा। किसी ने एक बार एक संन्यासी से पूछा था, "क्या आप कोई एकांत निरुपद्रव स्थान ढूँढ़ने में सफल हो सके हैं? आप कितने वर्षों से हिमालय की मनोरम घाटियों में भ्रमण कर रहे हैं?" संन्यासी ने उत्तर दिया, "चालीस वर्षों से।" तब उस व्यक्ति ने पुन: जिज्ञासा की, "भगवन्, हिमालय में तो निवास करने के लिए अनेक नितान्त सुन्दर स्थल हैं, तब अब तक आपने क्यों नहीं किसी स्थान का निर्वाचन किया?" संन्यासी ने कहा, "वत्स, इन पूरे चालीस वर्षों में जब तक मैं हिमालय में वास करता रहा, मेरे मन ने मुझे एक बार भी ऐसा करने की अनुमति नहीं दी।" हम सभी इसी प्रकार शान्ति की शोध में लगे रहते हैं, मन में शान्ति लाभ करने का संकल्प करते हैं, पर हमारा मन हमें शान्ति नहीं लेने देता।

हम सब उस सैनिक की कहानी जानते हैं, जिसने एक बार एक तातार को पकड़ लिया था। एक सैनिक नगर से लौटकर जब शिविर के समीप आया तो जोर-जोर से चिल्लाने लगा "मैंने एक तातार को कैद कर लिया है, मैंने एक तातार को कैद कर लिया है।" अन्दर से एक आवाज आयी, "उसे भीतर ले आओ।" सैनिक ने कहा, "वह भीतर नहीं आता।" "तब तुम्हीं भीतर आ जाओ।" "वह मुझे भी भीतर नहीं आने देता।" हम सब ने उस सैनिक की भाँति अपने-अपने मन में एक-एक 'तातार' पकड़ लिया है, और न तो हम स्वयं ही उसे वश में कर सकते हैं और न वह 'तातार' ही हमें शान्तिपूर्वक जीवन यापन करने देता है। हमारी दशा भी उस सैनिक की भाँति हो गयी है। हम सब शान्त और स्थिर होने का संकल्प करते हैं। किन्तु यह तो एक शिशु भी कह सकता है और मन में सोच सकता है कि वह सफल हो जायगा। पर वस्तुत: इसमें कृतकार्य होना अत्यन्त कठिन है। मैंने भी ऐसा प्रयत्न किया है। मैं अपने कर्तव्य-कर्मों को एकदम ही त्यागकर पर्वत-शिखरों की ओर प्रस्थान कर गया। मैं महान गुफाओं एवं निविड़ वनों में निवास करता रहा। पर व्यर्थ, क्योंकि मैंने भी एक 'तातार' पकड़ लिया था। मेरे विचारों का संसार सर्वत्र और सर्वदा मेरे साथ-साथ चल रहा था। यह 'तातार' हमारे ही मन में निवास करता है, इसलिए हमें अन्य व्यक्तियों पर अपनी शान्ति भंग करने का दोषारोपण नहीं करना चाहिए। हम अपनी बाह्य परिस्थितियों को दोष देकर कहते हैं—ये

परिस्थितियाँ अनुकूल हैं, ये प्रतिकूल हैं। पर हम भूल जाते हैं कि इन सब का कारण है वह 'तातार' जो हमारे मानस में ही निवास करता है, और उसे वशीभूत कर लेने पर सब ठीक हो जायगा।

इसलिए भागवान श्रीकृष्ण की शिक्षा है कि अपने कर्तव्यकर्म त्यागकर मत भागो, मनुष्य की भाँति उन्हें पूर्ण करने का यत्न करो और उनके फलाफल की चिन्ता न करो। सेवक को क्यों कहने का क्या अधिकार है? सैनिक को तर्क-वितर्क करने का अधिकार नहीं। कर्तव्य-पथ पर अग्रसर होते जाओ, और इस बात की चिन्ता न करो कि तुम्हारे कर्तव्य का रूप क्या है। केवल अपने मन से पूछो कि वह निःस्वार्थ भाव से कार्य कर रहा है या नहीं। यदि तुम यथार्थ में निःस्पृह हो, तो किसी बात की परवाह न करो, विश्व में कोई भी तुम्हारा पथावरोध नहीं कर पायेगा। अपने कर्तव्य में अपने को डुबा दो। जो काम हाथ में आ जाए, उसे करते जाओ। जब तुम इस प्रकार कर्तव्यरत हो जाओगे, तो शनैः-शनैः तुम्हें गीता के इस महान् सत्य की प्रतीति होने लगेगी, जो कर्मशीलता में शान्ति का अनुभव करता है तथा प्रबल निस्तब्धता एवं शान्ति में कर्मशीलता का दर्शन करता है। वही पूर्ण है विद्वान् है, वही सिद्ध है। तब तुम देखोगे कि श्रीकृष्ण के उपदेशानुसार संसार के सभी कर्तव्य-कर्म पवित्र हैं। ऐसा कोई काम नहीं है, जिसे निकृष्ट कहा जाय। भगवान श्रीकृष्ण के अनुसार तो सिंहासनारूढ़ सम्राट और सामान्य जन के कर्तव्यों का महत्त्व समान ही है कर्तव्य'-दृष्टि से दोनों में कोई भेद नहीं।

गुजराती मासिक पत्रिका

श्री रामकृष्ण ज्योत

दीपोत्सवी अंक

युवा विशेषांक

श्रीरामकृष्ण ज्योत का इस वर्ष (सन् १९९५ ई०) का दीपोत्सवी अंक युवा विशेषांक के रूप में प्रकाशित होगा। इस विशेषांक का मूल्य मात्र २५ रु० (पच्चीस रुपये) है। किन्तु ४०/- (चालीस रुपये) मात्र का वार्षिक शुल्क भेजने पर ग्राहकों को इस विशेषांक के लिए अतिरिक्त राशि नहीं देनी होगी।

शीघ्र सम्पर्क करें—

श्रीरामकृष्ण आश्रम
राजकोट--३६० ००१
(गुजरात)

प्राच्य का पाश्चात्य को संदेश

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द

स्वामी विवेकानन्द के शिकागो विश्व धर्ममहा सम्मेलन में अभिव्यक्त विचार प्राच्य की पुरातन संस्कृति का मानो आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता को सन्देश था। विश्व महाधर्म सम्मेलन में प्राच्य और पाश्चात्य के इस सम्मेलन का भगिनी निवेदिता ने इन शब्दों में वर्णन किया है, "उनके सम्मुख उपस्थित विशाल श्रोता समूह पाश्चात्य विचारधारा का ही प्रतिनिधि था, लेकिन इसमें जो परमोत्कृष्ट विशेषता है, उस सबका कुछ विकास भी श्रोताओं में विद्यमान था। ''आधुनिक उद्योग और संघर्ष को बहुत कुछ उत्कृष्ट और उनमें से कुछ निकृष्ट भाव, पश्चिम की इस नगरों की रानी (शिकागो) की सीमाओं के भीतर मिलते हैं।··· ज्ञान में ऐसा बहुत कम है, यूरोप के अतीत से उत्तराधिकार में प्राप्त ऐसा बहुत कम है जिसकी कोई-न-कोई चौकी शिकांगो की नगरी में विद्यमान न हो।

"ऐसी मनोवैज्ञानिक भूमि थी, ऐसा मानस सागर था—तरुण तुमुल तथा अपनी शक्ति और आत्म विश्वास से उफनता हुआ, फिर भी जिज्ञासु एवं जागरुक···जो भाषण आरम्भ करते समय विवेकानन्द के सम्मुख था। इसके ठीक विपरीत युग-युग के आध्यात्मिक विकास का प्रशान्त सागर था। उनके पीछे एक संसार था जो अपनी काल गणना वेदों से करता था उष्ण कटिबन्ध की सूर्य रश्मियों से स्नात देश, जिसकी सड़कों की रज पर युग युगान्तर से सन्तों के चरण चिह्न अंकित होते रहे थे।···तो यही थे वे दो मानस प्लावन, प्राच्य और अधुनातन चिन्तन के मानो दो प्रबल महानद।"

आपाततः अमेरिका गमन में स्वामीजी का मुख्य उद्देश्य भारत की भौतिक उन्नति के लिए धन संग्रह करना था। अपने पत्रों में स्वामीजी ने कई स्थानों पर इस बात को स्पष्ट किया है। अमेरिका पहुँचने पर वहाँ प्रवास के कुछ ही दिनों में उन्हें भारत के बारे में ईसाई मिशनरियों द्वारा फैलायी गयी भ्रान्त धारणाओं का पता चला, जिसके फलस्वरूप अमेरिकावासी भारत को असभ्य बर्बर, जंगली आदिवासियों का देश मानने लगे थे। इस भ्रान्त धारणा को दूर करना स्वामीजी का अमेरिका में दूसरा उद्देश्य बन गया। अतः भारत के लिए धनोपार्जन के साथ-ही-साथ अपने प्रवचनों के माध्यम से अमेरिकावासियों को भारत की सत्य छवि, भारतीय संस्कृति तथा भारतीय जीवन पद्धति, आदर्श धर्म इत्यादि का यथासाध्य वृतान्त भी देने लगे। लेकिन धीरे-धीरे उन्हें एक बात और समझ में आने लगी। उन्होंने स्पष्ट अनुभव किया कि अमेरिकावासियों को सच्चे धर्म, वास्तविक आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। उन्होंने अपने एक पत्र में इस बात को व्यक्त करते हुए कहा कि विश्व के धर्म प्राणहीन खोखले और बाह्य आडम्बर मात्र रह गये हैं। स्वामीजी की आध्यात्मिकता से प्रभावित होकर, धर्म-पिपासु, सच्चे जिज्ञासु उनके पास आने लगे, और एक जगदाचार्य के रूप में स्वामीजी उन्हें वसन्तवत् अहेतुक कृपा और मार्ग प्रदर्शन करने लगे।

शान्ताः महान्ताः निवसन्ति सन्तः
वसन्तवल्लोक हितं चरन्तः।
तीर्णाः स्वयं भीम मवार्णवऽऽया
नपि जनानहेतुना तारयन्तः॥

स्वयं स्वामी विवेकानन्द ने परवर्ती काल में कहा था—I have a message for the west as Bhudha hed for the east. अर्थात् जिस प्रकार बुद्ध ने प्राच्य को एक सन्देश प्रदान किया था उसी प्रकार पाश्चात्य के लिए मेरा एक सन्देश है।

स्वामीजी के व्याख्यानों को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है (१) भारत विषयक (२) धर्म समन्वय विषयक (३) बुद्ध और बौद्ध धर्म विषयक। इन व्याख्यानों के विश्लेषण एवं अध्ययन से यह भी पता चलता है कि ये प्रारम्भिक, प्राथमिक व्याख्यान मुख्यतः भारत की स्पष्ट एवं स्वस्थतर धर्म बनाने के लिए, भारत के विषय में अमेरिकावासियों को समझाने के लिए तथा धार्मिक सहिष्णुता तथा बौद्ध धर्म कि दया को समझाने के लिए थे।

भारत विषयक प्रवचन—

स्वामीजी धर्म. महासम्मेलन के पूर्व तथा परवर्ती प्रवचनों में कुछ रोचक अन्तर दिखाई देता है। पहले के प्रवचनों की रिपोर्ट से ऐसा प्रतीत होता है कि वे नादान से यह सोचते हैं कि सभी लोग अपने पड़ोसी का भला चाहने वाले हैं, तथा यह कि धनी अमेरिकावासी उदार व दानी भी हैं, तथा भारत की आवश्यकता को उन्हें बताने से ही धन मिल जायेगा। लेकिन ईसाईयों की कट्टरता एवं हठधर्मिता देख, उनकी भाषा में परिवर्तन आया। उन्होंने अमेरिकावासियों को आड़े हाथों लिया जो भारत में धर्म प्रचार के लिए पादरी भेजते हैं लेकिन भारतवासियों को अकाल मृत्यु से बचाने का प्रयत्न नहीं करते। अब धन के लिए प्रयत्न करने के बदले वे अपने प्रवचनों में भारत की जानकारी के द्वारा अमेरिकी जन समाज को शिक्षा देने लगे। उन्हें ज्ञात था कि भारतीयों की गरीबी को ईसाई धर्म के अभाव के कारण समझा जायेगा अतः उन्होंने इस विषय में चर्चा करना बन्द कर दिया। इसके बदले वे हिन्दुओं के धर्म तथा जीवन दर्शन को समझाने लगे। वे सदा गर्व के साथ भारत और भारतीय धर्म के बारे में कहते थे और कभी भी भारतीयों के दोषों के लिए क्षमा-याचना का दृष्टिकोण नहीं रखते थे। इस तरह स्वामीजी ने एक वर्ष के भीतर ही भारत विरोध और भ्रान्त धारणा की विचार धारा को, जो ईसाई मिशनरियों के अनेक दशकों के मिथ्या प्रचार के कारण प्रवाहित हो रही थी को परिवर्तित कर दिया। यह उन्होंने प्रचार के माध्यम से नहीं किया बल्कि भारतीय जीवन की कुछ झांकियां आंक कर किया। यथा, "जब हम धर्मोन्मत्त होते हैं तब हम स्वयं को प्रताड़ित करते हैं, स्वयं को विशाल रथों के नीचे फेंकते हैं, कांटों की सेज पर सोते हैं। पर जब आप लोग धर्मोन्मत्त होते हैं तो दूसरों का गला काटते हो दूसरों को आग मे जलाते हो और उन्हें कांटों की सेज पर सुलाते हो। तुम लोग अपने शरीर को कष्ट नहीं देना चाहते हो।" अथवा दूसरा उदाहरण लें; "पाश्चात्य में नारी एक पत्नी है, प्राच्य में वह माता है। हिन्दू माता की पूजा करता है।" "फिर अतिथि सेवा का भारतीय आदर्श बताते हुए उन्होंने कहा कि अतिथि के संतुष्ट होने के बाद ही बच्चे, पिता-माता भोजन करते हैं इत्यादि। स्वामीजी ने भारतीयों की ईमानदारी तथा नारियों की पवित्रता के सुन्दर शब्द चित्र अमेरिकावासियों के सम्मुख प्रस्तुत कर उन्हें मोहित कर लिया। "भारत की विश्व को देन" नामक व्याख्यान में स्वामीजी ने बताया कि विश्व अध्यात्म में ही भारत का ऋणी नहीं

है, भौतिक विज्ञान में भी भारत ने विश्व को बहुत कुछ दिया है।

इन प्रवचनों के द्वारा स्वामीजी ने अमेरिका वासियों के लिए भारत के सम्बन्ध में जिज्ञासा का द्वार खोल दिया। उन्हें लगा कि भारत एक प्राचीनतम संस्कृति का, उच्चतम आदर्शवाद का, पवित्रता तथा त्याग का एवं उच्चतम नैतिकता का देश है। जहाँ धर्म के नाम पर किसी को प्रताड़ित नहीं किया जाता। पाश्चात्य की आँखों में भारत सदा के लिए ऊँचा हो गया।

स्वामीजी ने भारत के दोष छिपाये नहीं। लेकिन उन्होंने कहा कि ये दोष भारत के मौलिक चरित्र के अंग नहीं हैं। जिस प्रकार सेव के नीचे पड़े सैकड़ों अधपके, सड़े, कीटों द्वारा खाये सेवों को देखकर उस पेड़ की संभावना तथा उसकी वास्तविक नस्ल का पता नहीं लगया जा सकता—इसके लिए तो पूर्ण परिपक्व एवं सर्वश्रेष्ठ सेव को देखना होगा। ठीक इसी तरह किसी राष्ट्र एवं वहाँ का प्रथाओं का अंकन उसके उच्चतम एवं श्रेष्ठतम मानवों से ही किया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से बहुत से विचारक सहमत नहीं थे, तथा वे भारत की पुरातन परम्पराओं को उखाड़ फेंकने के पक्ष में थे। लेकिन स्वामीजी इन सभी अति उत्साही सुधारवादियों के विचार से सहमत नहीं थे, जो भारतीय जीवन को एक विदेशी ढाँचे में ढालना चाहते थे। जिस प्रकार गंगा को पुनः हिमालय तक ढकेल कर पुनः नयी दिशा में बहाना असम्भव है। उसी प्रकार भारतीय जीवन प्रणाली को विदेशी सांचे में ढालना असंभव है।

भारत की धार्मिक परिपक्वता का प्रतिपादन करते समय स्वामीजी को एक अन्य प्रश्न का भी सामना करना पड़ा था, और वह यह था: यदि भारत इतना आध्यात्मिक देश है जितना आप कहते हैं, तो वह भौतिक दृष्टि से इतना पिछड़ा क्यों है, समृद्ध क्यों नहीं हैं? स्वामीजी अमेरिकी लोगों की गवेषणात्मक एवं नयी-नयी खोजें निकालने के, उसकी संघटनात्मक एवं कुछ कर गुजरने की क्षमता के प्रशंशक भी थे। वे तो मानव की भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक सभी प्रकार की समृद्धि चाहते थे। वस्तुतः उनकी तीव्रतम इच्छाओं में से एक भारत की भौतिक समृद्धि भी थी। लेकिन ऐसा वह उसकी आध्यात्मिकता को क्षति पहुँचाये बिना चाहते थे।

उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर स्वामीजी ने विभिन्न प्रकार से दिया था। यथा, एक स्थान पर उन्होंने कहा था कि धर्म ने भारत को भातिक दृष्टि से समृद्ध इसलिए नहीं किया कि यह धर्म का क्षेत्र नहीं है। भारतवासी नैतिक हैं तथा मूक पशुओं तक के प्रति सहानुभूति सम्पन्न हैं, लेकिन धर्म सदा ही भौतिक समृद्धि का विरोधी रहा है। उदाहरण के लिए ईसाई धर्म ने कभी भी डार्विन, मिल, ह्यूम आदि मौलिक विचारकों को प्रोत्साहित नहीं किया, जिन्होंने भौतिक समृद्धि की नींव स्थापित की थी। अन्य देशों से प्रतिस्पर्धा में सामान्यतः पाशविक शक्ति एवं रक्तपात के बिना अन्य देशों की तुलना में समृद्ध होना सम्भव नहीं होता—यह इतिहास का सिद्धान्त है। भारत ने सदा इस रक्तपात को अस्वीकार किया है और यही कारण है कि वह भौतिक समृद्धि में अन्य देशों से पिछड़ गया। इसके विपरीत जो देश भौतिक दृष्टि से समृद्ध बनते हैं—उनका आध्यात्मिक विकास कुंठित हो जाता है।

अतः स्वामीजी एक ऐसा रास्ता खोज निकालना चाहते थे जिसके द्वारा आध्यात्मिक प्रगति और भौतिक प्रगति, दोनों का सामंजस्य किया जा सके—दोनों का सन्तुलित विकास हो सके। पाश्चात्य के भौतिकवाद और प्राच्य के अध्यात्म को मिलाने से, सम्भवतः दोनों की प्रगति संभव

है। स्वामीजी के साहित्य में इसी समन्वय के आधुनिक उपाय हम प्राप्त करते हैं। वस्तुतः प्रत्येक युग में अवतारी महापुरुषों ने इस समस्या का भौतिकवाद और आध्यात्मिकता के समन्वय की समस्या का समाधान निकालने का प्रयत्न किया था। भगवद्गीता भी उसी प्रकार का एक प्रयास था।

बुद्ध और बौद्ध धर्म पर प्रवचन—

स्वामीजी ने अपने वेदान्त का सन्देश देने के लिए बुद्ध और बौद्ध धर्म का सहारा लिया था। वस्तुतः यह पद्धति नया नहीं है। स्वयं शंकराचार्य ने अपने ग्रन्थों, व्याख्याओं में विरोधियों को परास्त करने के लिए बौद्ध युक्तियों का सहारा लिया है -और वे प्रच्छन्न बुद्ध के नाम से जाने जाते हैं। अतः स्वामीजी ने जब देखा कि अमेरिका के लोग धार्मिक मतवादों और विश्वासों में आस्थाहीन हो रहे हैं, ये विश्वास अब उन्हें नैतिक बनाने के हेतु नहीं रहे हैं, तथा धर्म अब निराश के क्षणों में संबल नहीं बन पा रहा है तब स्वामीजी ने आत्मनिर्भरता, युक्ति, करुणा और दया को धर्म के महत्वपूर्ण अंगों के रूप में प्रस्तुत किया। इसके लिए उन्होंने बौद्ध धर्म को सर्वप्रथम लोगों को समझाने का प्रयत्न किया। बुद्ध ने पुरोहितवाद के अन्धविश्वासों पर आघात किया था। प्रत्येक प्राणी की मर्यादा को, उसकी अन्तर्निहित महानता को स्वीकारा था, तथा विशुद्ध युक्ति के सहारे एक करुणा एवं दयायुक्त धर्म की स्थापना की थी। स्वामीजी का कथन था कि यदि कोई व्यक्ति विशुद्ध तर्क का भी मार्ग अपनाये, तो भी वह अन्त में अद्वैत पर ही पहुँचेगा स्वामीजी बुद्ध के अज्ञेयवाद, अनात्मवाद व शून्यवा के प्रतिपादक नहीं थे। पर वे उनकी युक्तियुक्तता, भावुकता विरहित स्वस्थ चिन्तता के कायल थे। वे यह भी जानते थे कि आधुनिक युग में समग्र प्राणियों के प्रति सच्ची सहानुभूति कर्म का एक महत्वपूर्ण हेतु होगी। उनकी मान्यता थी कि वेदान्त दर्शन के साथ बौद्ध धर्म की सहानुभूति व दया को मिलाने से एक श्रेष्ठतर धर्म का निर्माण होगा। स्वामीजी मायावादी हिन्दू धर्म को जगत कल्याण के लिए सक्रिय रूप देना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने बुद्ध की सहानुभूति, कर्मठता तथा लोक कल्याण के सन्देश को महत्त्व दिया।

धर्म तथा धर्म समन्वय विषयक विचार—

अमेरिका की प्रथम यात्रा के समय स्वामीजी ने धर्म तथा धर्म समन्वय विषयक अनेक व्याख्यान दिये थे। उन सभी का विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है। प्राच्य का पाश्चात्य को संदेश वस्तुतः उन प्रवचनों में निहित है। धर्म महासभा में दिये गये प्रवचनों में ही सूत्र रूप में स्वामीजी ने अपने प्राच्य के सन्देश को पाश्चात्य को प्रदान कर दिया था। सर्वप्रथम सन्देश था, मानव के देवत्व का (Divinity of Man), हिन्दू धर्म पर अपने प्रवचन में स्वामीजी ने अमेरिका वासियों को कहा कि भारतीय आपको अमृत का पुत्र कहता है - अमृतस्य पुत्राः। वैदिक ऋषि की अनुभूति और अन्तःस्फूर्ति की अवस्था में निकली वाणी विदेशियों को सुनाते हुए स्वामीजी ने कहा—

"श्रण्वन्तु विश्वे, अमृतस्य पुत्राः,
आये धामानि दिव्यानि तस्युः।
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं आदित्यवर्णं तमसः
परस्तात्
तमेव विदिला तिमृत्युमेति नान्यः
पन्थाविद्यतेऽयनाय।

स्वामीजी ने कहा, अमृत के पुत्रों कैसा मधुर नाम है। हिन्दू आपको पापी कहना अस्वीकार

करता है। आप ईश्वर की सन्तान हैं—अमर आनन्द के भागी, पवित्र और पूर्ण आत्मा। आप भक्ता पापो ? मनुष्य को पापी कहना ही पाप है—वह मानव स्वरूप पर घोर लाञ्छन है।

इसी उपनिषद् की वाणी से स्वामीजी ने प्राच्य का पाचात्य को दूसरा सन्देश भी दिया। विना उस दिव्य पुरुष को जाने परमात्मा का अनुभव किये, अमृतत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस तुःखमय संसार सागर से मुक्ति नहीं मिल सकती। पाश्चात्य की विचारधारा में जो धार्मिक विचारधारा थी, वह Semitic religion की थी—जिसके अनुसार मनुष्य जन्म से ही पापी है - आदम और हौआ के मूल पाप को वह आज तक भोग रहा है। और उसका उद्धार है भगवान में—उनके पुत्र ईसा में विश्वास—लेकिन यह मतवाद आधुनिक विज्ञान व युक्तिवाद के सामने अपना प्रभाव खो रहा था। पाश्चात्य लोग एक नया धर्म चाहते थे और वह स्वामीजी ने दिया : मानव का वास्तविक स्वरूप आत्मा है और उसका साक्षात्कार किया जा सकता है। यही कार्य सभी धर्म कर रहे हैं—और इन धर्मों द्वारा किये जाने वाले कार्यों को स्वामीजी ने युक्तिपूर्ण तरीके से, मनोवैज्ञानिक ढंग से चार भागों में विभक्त किया।

धर्म समन्वय कैसे किया स्वामीजी ने ? प्रथम प्रवचन में ही स्वामीजी ने शिव महिमा स्त्रोत की पंक्तियाँ उद्धृत करते हुए कहा—

रुचीना वैचित्र्याम्मृगु कुटिल नाना पथ पुषां।
नृणामे को गम्यः त्वमसि पयसा पर्ण वऽव ॥

जिस प्रकार विभिन्न नदियाँ टेढ़े-मेढ़े नाना मार्गों से बहती हुई एक समुद्र को पहुँचती हैं, उसी प्रकार लोग रुची भेद के अनुसार नाना धर्म मार्गों का अवलम्बन कर एक ही सत्य तक पहुँच रहे हैं।

तात्पर्य यह कि स्वामी विवेकानन्द ने पाश्चात्य को यह बताया कि सभी अमृत के अधिकारी हैं, सभी धर्म उसके साक्षात्कार के उचित उपाय हैं, तथा किसी मतवाद में अन्धविश्वासी होना धार्मिक होने के लिए आवश्यक नहीं है। धार्मिक होने का अर्थ है, अनुभूति सम्पन्न होना, आदर्शों को अपने जीवन में आत्मसात् करना तथा चरित्र का समूल परिवर्तन करना।

शिकागो धर्म महासभा के बाद स्वामी विवेकानन्द अमेरिका में तीन वर्षों तक रहे। अपने वहाँ के प्रवास के दौरान उन्होंने पाश्चात्य की आध्यात्मिक आवश्यकता को समझा तथा तदनुरूप अपने आध्यात्मिक भण्डार से उस आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए मुक्त हस्त से दान किया।

स्वामी विवेकानन्द का व्यक्तित्व—

लेकिन प्राच्य का पाश्चात्य को सबसे महत्त्वपूर्ण सन्देश स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व के रूप में पहुँचा था। यह बात स्वामी विवेकानन्द के द्वारा उच्चारित "अमेरिकावासी भाईयो और बहनो" के प्रारम्भिक प्रभाव के विश्लेषण से ही स्पष्ट हो जाती है। हम सभी जानते हैं कि इन चन्द शब्दों से ही वह विशाल जनसभा मन्त्र मुग्ध हो गयी थी, तालियों की गड़गड़ाहट से वह भवन गुंजित हो गया था। परवर्ती काल में जब किसी ने स्वामीजी से पूछा था कि इन शब्दों के पीछे क्या किसी योगजन्य शक्ति का प्रयोग किया गया था तो स्वामीजी ने उत्तर दिया था कि उनके पीछे पवित्रता की शक्ति विद्यमान थी। उन्होंने अपने जीवन में कभी भी एक भी अपवित्र विचार नहीं सोचा था, यही कारण है कि उनकी वाणी में ऐसी सम्मोहिनी क्षमता पैदा हो गयी थी। यही नहीं वे अद्वैत-अनुभूति में प्रतिष्ठित थे और उनके द्वारा जो कुछ कहा गया था उसके

पीछे अनुभूति का सत्य था, अतः वे इतने सफल हुए थे।

आध्यात्मिक अनुभूति सम्पन्न ऋषि होने के साथ-ही-साथ स्वामी विवेकानन्द विद्वता व वाग्मिता में भी बेजोड़ थे। हार्वड यूनिवर्सिटी के डॉ० जान हेनरी राइट के अनुसार वे अमेरिका के सभी विद्वानों की सम्मिलित विद्वता से भी अधिक विद्वान थे। अमेरिका के समाचार पत्रों ने स्वामी विवेकानन्द को दैवी अधिकार सम्पन्न की संज्ञा दी थी। वे वार्तालाप में अत्यन्त सक्षम तथा व्यवहार कुशल थे। शारीरिक सौन्दर्य में देवतुल्य, बालक की तरह सरल और साथ ही गंभीर और सौम्य भी थे। वे एक ध्यान-सिद्ध योगी थे, तथा धर्म को अनायास प्रदान करने की क्षमता वाले दैवी शक्ति सम्पन्न अधिकारी पुरुष थे। वे अपनी इच्छा मात्र से दूसरों में पवित्रता व आध्यात्मिकता का संचार कर सकते थे, दूसरों की कुण्डलिनी जगा सकते थे। इसके अनेक दृष्टांत हमें उनके अमेरिकी निवासकाल के अवलोकन में प्राप्त होते हैं।

उपसंहार—

उपर्युक्त वृत्तान्त के क्या निष्कर्ष हैं? क्या है स्वामी विवेकानन्द का पाश्चात्य को सन्देश, उनके माध्यम से प्राच्य का उद्घोष? वह है, धर्म सहिष्णुता, धर्म की सत्यता, और मानव के देवत्व की अभिव्यक्ति। पाश्चात्य यंत्र, कंप्यूटर प्रस्तुत करता है—प्राच्य उसके सामने ऋषि खड़ा करता है। कंप्यूटर के द्वारा ऋषि नहीं बनाये जा सकते, लेकिन कंप्यूटर के निर्माण और संचालन के लिए ऋषि आवश्यक हैं प्राच्य को पाश्चात्य का यही सन्देश है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्तर्निहित देवत्व की अभिव्यक्ति के लिए भरसक प्रयत्न करे, तथा आदर्शों को आत्मसात् कर, चरित्र का निर्माण कर, आध्यात्मिक-साक्षात्कार प्राप्त कर ऋषि बने।

□

मेरी अमरनाथ यात्रा

'मुसाफिर'

[श्रीरामकृष्ण आश्रम, राजकोट द्वारा प्रकाशित गुजराती मासिकी 'श्रीरामकृष्ण ज्योत' से यह निबन्ध साभार गृहित एवं अनूदित है। अनुवादक हैं—श्री अशोक चंचल।—सं०]

कड़कड़ाती ठंड थी। अमरगंगा का जल बर्फ जैसा ठंडा था। उसमें स्नान करने के बाद मात्र कौपीन पहन कर, पूरे शरीर में भभूत लगाकर स्वामी विवेकानंदजी ने अमरनाथ की गुफा में प्रवेश किया। बर्फ-निर्मित उज्ज्वल, पवित्र, पूर्ण शिवलिंग का दर्शन करते ही वे भक्तिभाव से अभिभूत हो गये। वे बार-बार साष्टांग प्रणाम करते रहे। उन्हें एक अद्भुत आध्यात्मिक अनुभूति हुई।

बाद में स्वामीजी ने इस अलौकिक अनुभूति के बारे में कहा था कि उन्हें शिवजी का साक्षात् दर्शन हुआ था। देवाधिदेव ने उन्हें इच्छामृत्यु का वरदान दिया था। सिस्टर निवेदिता के साथ बातचीत के एक प्रसंग में उन्होंने कहा था, "इस शिवलिंग में मैंने ईश्वर का साक्षात्कार किया। इससे अधिक सुन्दर, अधिक प्रेरणादायी स्थान मैंने कदापि नहीं देखा।'

कश्मीर से कलकत्ता वापस आने के बाद भी

स्वामीजी सदैव गंभीर एवम् उच्च भावमग्न अवस्था में ही रहते थे। उनके शिष्य श्री शरत्चंद्र चक्रवर्ती ने इसका कारण जानने की जिज्ञासा प्रकट की तो स्वामीजी ने कहा, "मैंने अमरनाथ में कठोर तपस्या की थी। अमरनाथ की यात्रा के पश्चात् मुझे लगता है जैसे मानो शिवजी मेरे मस्तक पर चौबीस घंटे सवार रहते हैं; नीचे उतरते ही नहीं।"

यह सब जब से पढ़ा था - तब से-वर्षों से-- अमरनाथ की यात्रा करने की इच्छा बलवती होती जा रही थी। इसके बाद सुना कि कश्मीर में आतंकवाद का जोर बढ़ रहा है। तब—'पता नहीं, कब यात्रा का मार्ग बन्द हो जाय?' ऐसा सोच कर उसी वर्ष (सन् १९९३ ई० में ही) अमरनाथ की यात्रा करने का निश्चय किया।

सदियों से हजारों की संख्या में श्रद्धालु अमरनाथ की यात्रा करते हैं। वैसे तो जुलाई से सितम्बर तक अमरनाथ का मार्ग खुला रहता है; परन्तु पता चला कि इस साल आतंकवादियों के भय के चलते यात्रा पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। सभी यात्रियों को एक ही साथ 'छड़ी मुबारक' के साथ सेना के संरक्षण में जाना पड़ेगा और श्रावण पूर्णिमा के दिन ही अमरनाथ का पवित्र दर्शन हो सकेगा।

यही कारण था कि सोनमर्ग का रास्ता प्रशासन द्वारा बन्द कर दिया गया था। इस मार्ग से श्रीनगर होकर अमरनाथ का दर्शन करते हुए उसी दिन फिर वापस आया जा सकता है, जबकि परम्परागत मार्ग में पहलगाम वाले रास्ते से तो ४-५ दिन लग जाते हैं। किन्तु अन्य कोई विकल्प न था। इसलिए श्रावणी पूर्णिमा के दिन 'छड़ी मुबारक' के साथ अमरनाथ का दर्शन करने का संकल्प किया। संयोगवश इस साल (१९९३ में) दूसरी अगस्त को ही श्रावणी पूर्णिमा थी। स्वामी जी ने इसी दिन—श्रावणी पूर्णिमा को दूसरी अगस्त, १८७८ के रोज भगवान अमरनाथ का दर्शन किया था।

किंवदन्ती के अनुसार कश्मीर के राजा को शिवजी के द्वारा वरदान में चाँदी की एक छड़ी मिली थी। श्रीनगर के दसनामी अखाड़ा से श्रावण शुक्लपक्ष में इस पवित्र छड़ी के जुलूस के साथ असंख्य साधु अमरनाथजी की यात्रा के लिए प्रस्थान करते हैं। इनके साथ देश के विभिन्न स्थानों से आकर हजारों यात्री भी जुड़ जाते हैं और इस 'छड़ी मुबारक' के पीछे-पीछे जुलूस के रूप में आगे बढ़ते हैं।

पहले 'छड़ी मुबारक' का दल श्रीनगर से ही प्रस्थान करता था, किन्तु पिछले कुछ वर्षों से आतंकवाद के कारण, श्रीनगर का मार्ग अवरूद्ध हो जाने के चलते, अब पहलगाम से ही छड़ी मुबारक का जलूस प्रस्थान करता है। पता चला कि प्रशासन ने जम्मू से पहलगाम जाने के लिए विशेष बस तथा संरक्षण की व्यवस्था की है; और सभी लोगों को २८ जुलाई के पहले ही जम्मू पहुँच जाना पड़ेगा।

बहुत सारे लोग तो पहले एक माह पूर्व ही यानी कि गुरू पूर्णिमा के दिन ही हर साल अमरनाथ का दर्शन करते क्योंकि इन दिनों में भीड़ कम होती है, और शांतिपूर्ण रूप से दर्शन लाभ मिल सकता है। किन्तु इस बार तो कोई विकल्प ही न था। इसलिए २७वीं तारीख को ही जम्मू पहुँच जाने की योजना बना ली। ट्रेन में आरक्षण भी करा लिया। किंतु, 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि', सत्कार्य में अनेक विघ्न आते हैं!

जम्मू के लिए रवाना होने के कुछ दिनों पूर्व ही पता चला कि हिमालय में भीषण वर्षा हुई है। भूस्खलन भी हुआ है। अनेक ट्रेनों का आवागमन रद्द कर दिया गया है, इत्यादि। कितने ही

व्यक्तियों ने यात्रा रद्द करने की सलाह दी किन्तु, मैंने तो दृढ़ संकल्प किया था कि इस वर्ष तो "येन केन प्रकारेण" श्री अमरनाथ का दर्शन करना ही है। परन्तु, जिस ट्रेन में आरक्षण प्राप्त किया था वह ट्रेन ही रद्द हो गया। अब क्या किया जाय? दूसरी ट्रेन में आरक्षण मिला नहीं। जैसे-तैसे दो गाड़ियाँ बदल कर २७वीं जुलाई को जम्मू पहुँच गया। यद्यपि मार्ग में कठिनाइयाँ तो अवश्य हुईं, तथापि रोमांचक यात्रा का एक अपना ही आनन्द होता है। फिर शिवजी की इच्छा शायद तपस्या कराने की ही रही होगी।

जम्मू पहुँचते ही पता चला कि अमरनाथ का मार्ग तो २१ तारीख से ही खुल गया है! 'छड़ी मुबारक' वाले यात्रियों की भीड़ से बचने के लिए दूसरे ही दिन की, यानी २८वीं जुलाई की ही पहलगाम की टिकट कटा ली। यहाँ अन्य साथी भी मिल गये। हमारे दल में दस लोग थे—तीन संन्यासी तथा सात युवक।

२८वीं जुलाई को प्रातः पाँच बजे तक बस स्टैण्ड पहुँच जाना था। प्रशासन ने चेतावनी दी थी कि सात बजे के पहले ही सभी बसें जम्मू से रवाना हो जायेंगी। क्योंकि कश्मीर के उस भाग में—जहाँ आतंकवादियों का विशेष भय था—वहाँ से रात होने के पूर्व ही बसों को पार कर लेना होगा।

हम ठीक पाँच बजे पहुँच गये। परन्तु वहाँ तो अव्यवस्था की पराकाष्ठा थी! हमें तो अपनी-अपनी टिकटों पर दिये गये क्रमांक वाली बस में ही बैठना था। किन्तु, वहाँ जाकर देखा तो लगभग तीन सौ बसें अस्त-व्यस्त पड़ी थीं। ये सभी बसें मुख्य मार्गों पर अथवा गलियों में खड़ी थीं और इनमें से किसी पर क्रमांक तो लिखा ही नहीं था।

पूछताछ कार्यालय में पूछा तो पता चला कि वहीं एक ब्लैकबोर्ड पर बस के प्लेट नंबर के सामने बस का क्रमांक लिखा हुआ था। बड़ी मुश्किल से हमने अपनी बस का प्लेट नंबर खोजा और फिर बस की खोज में, बस स्टैण्ड के आसपास चक्कर लगाने लगा।

यह एक अजीब दृश्य था। सैकड़ों चिन्ताग्रस्त लोग अपनी-अपनी बसों की खोज में लगे हुए थे। जिन्हें अपनी बस मिल गयी थी वे अन्दर बैठकर मजे ले रहे थे और अन्य यात्रियों को मुस्कुराते हुए पूछ रहे थे, "आपको अभी तक अपनी बस नहीं मिली?" आखिर घंटों के 'लेफ्ट-राइट' के बाद एक गली में छिपी हमारी बस मिल गयी। ड्राइवर ने कह दिया, 'जब तक इस बस के सभी यात्री आ नहीं जाते यह बस निकलेगी नहीं।

इसलिए अब दूसरे लोग अन्य सहयात्रियों की खोज में निकले। ढेर सारे लोग अब भी बुझे हुए मन से पूछताछ दफ्तर के पास खड़े थे। वहाँ बहुत से हमारी बस वाले यात्री भी मिल गये। आखिर पाँच के बदले सात बजे हमारी बस रवाना हुई।

बसों के काफिले के सबसे आगे और एकदम पीछे मिलिटरी की गाड़ियाँ थीं। इसके अलावा प्रत्येक बस में एक-एक सशस्त्र जवान भी था। मार्ग में भी थोड़ी-थोड़ी दूर पर रायफल के साथ सैनिक तैनात थे। बहुत से स्थानों पर तो ऑटोमेटिक मशीनगन के साथ भी जवान खड़े थे। ऐसा लगता था मानो युद्ध क्षेत्र में आ गये हों! किंतु कोई भयभीत न था; क्योंकि सेना के जवान भी यात्रियों को 'जय भोले शंकर की' 'जय बाबा अमरनाथ' जैसे जयघोष से अपनी अन्तर की शुभेच्छाएं दे रहे थे।

बस जब नेहरू टनेल (लगभग २ कि०मी० लंबी सुरंग) में से गुजर रही थी तब हम एक संकट से बाल-बाल बच गये। सुरंग के ठीक बीचो-बीच बस खड़ी रह गयी। शायद आगे जाने

वाली कोई बस बन्द हो गयी हो । बाहर जोरदार वर्षा हो रही थी। इतने में सुरंग की लाइटें भी चली गयीं. ऐसी ठंड में बसों की इंजिन बन्द करने के बाद फिर से चालू करना बड़ा कठिन होता है इस डर से सभी बसों की इंजिन को चालू रखा गया था; और डीजल जलने से धुएं के तो बादल बन रहे थे...जहाँ देखो वहाँ बसें ही बसें। आगे और पीछे बसों की लंबी कतारें ·· ।

थोडी ही देर में दम घटने लगा। कार्बन डाय-ऑक्साइड से पूरी सुरंग ही मानो गैस चेम्बर बन गयी हो ! अमरनाथ के दर्शन से पूर्व ही क्या मृत्यु देवता का साक्षात्कार करना होगा ? ऐसे ही अप्रत्याशित विचारों की शृंखला में हम फँसे हुए थे—तभी मार्ग खुल गया और बसों की कतारें आगे सरकने लगी। सुरंग पूरी होते ही कश्मीर की सरहद का प्रारंभ हुआ। अब पहले से भी ज्यादा कड़ी सुरक्षा व्यवस्था दिखाई पड़ी। अनंत नाग में तो १०-१२ घरों के अन्तर पर रास्तों पर रायफलधारी जवान दृष्टिगोचर होने लगे।

लगभग ४०० कि० मी० की दूरी तय कर शाम को ६ बजे हम लोग पहलगाम पहुँचे। रात्रि निवास कहाँ करें ? समस्या बड़ी कठिन थी। सुना कि हर साल लगभग ५० हजार यात्री अमरनाथ के दर्शन को आते हैं, किंतु इस बार यात्रियों की संख्या एक लाख तक पहुँचने की सम्भावना थी। आतंकवाद के भय से संख्या घटने की अपेक्षा बढ़ ही गयी। हालाँकि, इससे एक फायदा यह हुआ कि बहुत-सी सेवाभावी संस्थाओं ने आतंकवाद की बात सुनकर निःशुल्क भोजनालय (लंगर) खोल दिये। पहलगाम से अमरनाथ तक हर पड़ाव पर अनेक 'लंगर' दिखाई पड़े... ।

इन लंगरों में तो विधिवत् स्पर्धा का श्रीगणेश हो चुका था ! कोई मुफ्त में चाय पिलाता था तो दूसरा दूध, तीसरा लंगरवाला बादाम-पिस्तावाला दूध देता, तो कोई रोटी-सब्जी या अन्य कोई खीर-पुड़ी देता ! यात्रियों को आग्रह करके भोजन कराया जाता ! इस प्रकार खाने-पीने का खर्च तो नगण्य हो गया। किंतु होटल में रहने का चार्ज सुनकर हम निराश हो गये, सभी धर्मशालाएँ भर चुकी थीं। आखिर में एक गुरूद्वारा में शरण मिली। जैसे-तैसे रात बितायी। सोने से पूर्व यात्रा के लिए आवश्यक सभी चीजें -स्लीपिंग बैग, छडी, कॅन्वास का जूता, रेन कोट, पिपरमेन्ट इत्यादि खरीद ली। बहुत-से लोग तो पर्यटन कार्यालय में जाकर घोड़ा और टेण्ट की बुकिंग करा आये। हमारी इच्छा तो पैदल चलकर ही जाने की थी और ऐसा सोचकर कि रहने के लिए कोई-न-कोई व्यवस्था हो ही जायगी; हमने बुकिंग नहीं करायी।

दूसरे दिन २९वीं जुलाई को—हमलोगों ने पहलगाम से सुबह ६ बजे चंदनवाड़ी जाने के लिए प्रस्थान किया। १६ कि० मी० लंबा यह रास्ता संकीर्ण है, इसलिए बसें इस मार्ग पर नहीं दौड़तीं। टैक्सी या मेटाडोर में ही जाना पड़ता है। मेटाडोर टैक्सी से सस्ती होने की वजह से हम इसी में बैठे। स्वप्निल सौंदर्य से परिव्याप्त, हरे-भरे पर्वतों से घिरी लिदार नदी के किनारे स्थित पहलगाम की शोभा का अहसास रात में तो हुआ ही नहीं था। अब इस सौंदर्य की प्रतीति सूर्योदय की स्वर्णिम किरणों ने कराया।

गगनचुंबी देवदार और चीड़ के वृक्षों, चारों ओर फैले जंगली फूलों और रंग-बिरंगे पक्षियों का निरीक्षण करते-करते १० बजे हम चंदनबाड़ी पहुँच गये। यह जगह समुद्र की सतह से साढ़े नौ हजार फुट की ऊँचाई पर है।

अब आगे पैदल ही चलना था। इसलिए १० व्यक्तियों के हमारे सामान को उठाने के लिए हमने दो कुली कर लिए। आवश्यक वस्तुओं की

कए बैग अपने पास रखकर बाकी का सामान कुलियों को पकड़ा दिया। आगे चलते हुए चढ़ाई पर यह छोटी बैग भी भारी लगने लगी, यहीं से अत्यन्त कठिन एवम् दुर्गम चढ़ाई का प्रारम्भ होता है। परन्तु मार्ग का प्राकृतिक सौंदर्य मन को बहलाया करता है। यहीं एक घाटी के ठीक बीच से एक नदी निकलती है। बर्फ की सरकती हुई शिलाएँ कमान की तरह पुल के रूप में अवस्थित हो जाती हैं। नीचे से नदी बहती है। बर्फ के पुल पर से गुजरने का अनुभव रोमांचक है।

हमारे आगे-पीछे ढेर सारे यात्री 'अमरनाथ स्वामी की जय' 'हर-हर महादेव' 'जय बोलो भोले की' 'बम-बम भोले' 'जय भोलेनाथ' इत्यादि जय-घोष के साथ पूरे उत्साह से आगे बढ़ रहे थे, और इस के बाद दुर्गम चढ़ाई का प्रारम्भ हुआ। हमलोगों में से किसी-किसी ने घोडा कर लिया। नया बूट पहनने से मेरे दाहिने पाँव का अंगूठा लहूलुहान हो गया था—तथापि मैंने पैदल चलना ही पसन्द किया।

पिस्सू घाटी की दुर्गम चढ़ाई को पूर्ण करने के बाद शिखर पर थोड़ी देर विश्राम करने बैठा। एक किंवदन्ती ऐसी है कि पिस्सू घाटी में देव-दानव का संग्राम हुआ था। संग्राम में जो असुर मारे गये थे, उनके शरीर की हड्डियाँ पत्थरों का ऊँचा ढेर बन गयीं। इस तरह के पत्थरों के अनगिनत ढेर दिखाई पड़े।

शाम को चार बजे हम शेषनाग पहुँचे।

हिमाच्छादित ऊँची-ऊँची पर्वतमालाओं के बीच असीम जलराशियुक्त शेषनाग का जलाशय प्रकृति का अप्रतिम चमत्कार ही तो है। पौराणिक कथा के अनुसार पवनरूपधारी असुरों ने देवताओं को त्रस्त किया था। इस अपराध के कारण ही भगवान विष्णु ने उन्हें मारने के लिए शेषनाग को आदेश दिया था।

शेषनाग में अनेक अस्थाई टेन्ट थे। ६ घंटों में १३ कि० मी० की दूरी तय कर सभी थक कर चूर हो गये थे। हमने रात वहीं बितायी। हमारा टेण्ट जलाशय के बिल्कुल नजदीक था। टेन्टवाले ने कहा था, 'कभी-कभार जलाशय में रात्रि को शेषनाग का दर्शन होता है। अगर आप भाग्यशाली होंगे तो रात को शेषनाग दिखाई पड़ेंगे। हम घंटा बजायेंगे—ताकि आपलोग दर्शन का लाभ ले सकें।

रात्रि को लगभग दो बजे के आसपास लोगों का शोरगुल सुनाई पड़ा। कड़कड़ाती ठंड में हमें बाहर निकलने साहस न हुआ। टेन्ट के खुले हिस्से से झांक कर देखा—अदभुत् दृश्य! जलाशय में शेषनाग जैसा आकार दिखाई पड़ रहा था। पाँच जिह्वा जैसा कुछ दृष्टिगोचर हो रहा था और पूँछ का भाग भी। जलाशय के दूसरे किनारे तक बिजली के बल्व मानो टिमटिमाते हों ऐसा दिखाई पड़ रहा था!

पहले तो ऐसा अनुमान किया कि आसपास के हिमाच्छादित शिखरों पर चन्द्र का प्रकाश पड़ने से तथा उसकी छाया-प्रतिछाया जलाशय के जल में पड़ने से शायद यह भ्रांति हो रही होगी। परन्तु, अनेकबार पुनर्विचारणा करते रहने के पश्चात् भी इस रहस्य का भेद समझ न पाया। रहस्योद्घाटन करने की चेष्टा में कब नींद आ गयी—पता भी नहीं चला। दूसरे दिन सुबह के समय लंगर में से निःशुल्क चाय-नाश्ता लेकर यात्रा का प्रारम्भ किया।

छः किलोमीटर की चढ़ाई दुष्कर एवम् कष्ट दायक रही। महागुण नामक पर्वत पर हमने विश्राम किया। यह स्थान समुद्र की सतह से १४,००० फुट की ऊँचाई पर अवस्थित है—जबकि शेषनाग ११,७०० फुट ऊँचा है। यहाँ हवा पतली हो जाती है; ऑक्सीजन की कमी के कारण साँस

लेने में भी कठिनाई पड़ती है। नींबू तथा पीपरमेंट चूसने से थोड़ी राहत मिलती है। हमने पीपरमेंट ली थी उसका अच्छा उपयोग हुआ।

दोपहर को दो बजे हम 'पंचतरणी' आ गये। यह स्थान शेषनाग से १३ कि० मी० दूर समुद्र तट से ११,२०० फुट की ऊँचाई पर है। यहाँ पर पाँच जल प्रपात के दर्शन हुए। किंवदंती है कि शिवजी ने इस स्थान पर अपनी जटा को निचोड़ा था और देवतागण उनकी इस दया से प्रसन्न होकर इस जलधारा में स्नान कर कृतकृत्य हो गये थे। यहाँ स्नान करने की बड़ी महिमा है, किन्तु हममें से लगभग सभी सर्दी-बुखार वगैरह से परेशान थे, इसलिए हम इसके पुण्यलाभ के वंचित रहे।

रात्रि बिताने के लिए टेन्ट की व्यवस्था तो हो गयी—किन्तु एक नयी समस्या खड़ी हो गयी। हमारे समूह का एक युवक मिल नहीं रहा था। अब क्या करें? पता चला कि वह सबसे आगे जल्दी निकल गया था। इसके अलावा उसे चक्कर आने की बीमारी भी थी। कितने ही तरह के विचार आने लगे। पाँव फिसलने या चक्कर आने से क्या वह हजारों फूट गहरी घाटी में गिर गया होगा; अमरनाथ के पथ की भयानकता से हम परिचित तो थे ही, कुछ समय पूर्व ही रास्ते चलते कितने लोगों को एक शव लेकर नीचे उतरते देखा था। उसका हृदय बंद पड़ गया था।

एक पहाड़ के ऊपर से देखा था कि हजारों फूट नीचे नदी के किनारे एक मरा हुआ घोड़ा पड़ा था। कुछ देर पूर्व ही फिसलकर गिरा होगा? थोड़ी देर पहले ही एक व्यक्ति को घोड़े के ऊपर से गिरकर नीचे लुढ़कते हुए देखा था। सौभाग्य से एक वृक्ष का सहारा मिलने से वह बिल्कुल नीचे लुढ़ककर मरने से बच गया था।

मिलीटरी कैम्प में से माइक पर पूरी रात उसके लिए घोषणा की गयी। बहुत सारे जवान उसे ढूँढ़ने के लिए निकल पड़े। पूरी रात चिंता में व्यतीत हुई। दूसरे दिन, ३१ जुलाई की सुबह पाँच बजे अमरनाथ के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में चलते हुए शिवजी से प्रार्थना की, 'खोया हुआ यह आदमी मिल जाय बस यही इस यात्रा की फलश्रुति होगी। 'इतने में देखा कि एक व्यक्ति अमरनाथ की यात्रा कर वापस आ रहा था। उसने कहा, 'आप जिन्हें कल शाम को खोज रहे थे—वह तो वहाँ अमरनाथ में है, मेरे ही साथ उसने रात को दर्शन किये!

वाह; प्रभु की लीला! चिंता दूर हुई। अब आसपास के मनोरम दृश्य की ओर ध्यान गया। लगभग सीधी चढ़ाई की पगडंडी पर से हम गुजर रहे थे। हजारों फुट नीचे नदी बह रही थी। उसके सामने हिमाच्छादित शिखरों को सूर्यनारायण अपनी स्वर्णिम किरणों से स्नान करा रहे थे। थोड़ी ही देर के बाद दूर से अमरनाथ की गुफा दिखाई पड़ी।

सभी यात्री उत्साहित हो गये। 'हर हर बम बम भोले' 'जय बाबा अमरनाथ की' आदि उद्घोषों से वातावरण गुंजायमान हो गया। बर्फ की नदी पर चलते हुए आठ बजे हम अमरगंगा के तट पर पहुँचे। यहाँ स्नान करने के पश्चात् ऊपर अमरनाथ के दर्शन के लिए प्रस्थान करने की प्रथा है। सभी यात्रियों ने अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार स्नान किया।

किनारे पर नदी की गहराई कम है; परन्तु जल की धारा बड़ी तेज है। जरा-सी गफलत हो तो आदमी बह जाये—लाश का भी पता न चले। बर्फ का जल इतना शीतल है कि अन्दर डुबकी लगाने के बाद समस्त शरीर काला हो जाता है। किसी-किसी ने तो किनारे पर ही बैठे-बैठे पात्र के द्वारा जल लेकर स्नान सम्पन्न किया कितनों ने डुबकियाँ भी लगायी।

अन्य सभी सामान नीचे रखकर, पूजा की सामग्री हाथ में लिए, नंगे पाँव ऊपर जाने के लिए हम सीढ़ियाँ चढ़ने लगे। गुफा बहुत ऊँची है। किंतु, 'थोड़ी देर में ही अमरनाथ के दर्शन का स्वप्न पूरा होगा'—इस विचार मात्र से ही अत्यन्त आनन्द और प्रेम का एहसास होने लगा था। इससे हम अन्य कठिनाइयों को भूल गये।

समुद्र तट से १२,७२९ फुट की ऊँचाई पर अवस्थित यह गुफा ३० फुट चौड़ी, ६० फुट लंबी और १५ फुट ऊँची है; जिप्सम पत्थर से बनी इस विशाल गुफा में एक साथ २५० भक्त दर्शन कर सकते हैं। दूर से ही उसका दर्शन करते हुए अनन्य भाव प्रकट होते हैं और अन्दर प्रवेश करने के साथ ही अद्भुत शांति का अनुभव होता है। अन्दर प्रवेश करते ही देखा—एक कोने में अमरनाथ का निर्मित सुन्दर पूर्ण शिवलिंग-लगभग १०½ फुट ऊँचा और ८ फुट चौड़ा। प्रकृति का कैसा अद्भुत निर्माण! गुफा की छत से टपकती जल की एक-एक बूंद बर्फ की आकृति में जमकर शिवलिंग का आकार धारण करती है।

चन्द्र की कलाओं के साथ ही इसके आकार में ह्रास और वृद्धि होती रहती है। पूर्णिमा के दिन तो यह परिपूर्ण अवस्था में दृष्टिगोचर होता है और हमने जब दिन को दर्शन किया (३१वीं जुलाई) तब पूनम को दो दिन बाकी थे। फिर भी लगभग परिपूर्ण अवस्था में यह दिखाई पड़ा। इसके अतिरिक्त गुफा में दो अन्य बर्फ के लिंग दिखाई पड़ते हैं।

आश्चर्य की बात तो यह है कि, ये तीन लिंग ही पूरी तरफ पक्की बर्फ से निर्मित हैं। जबकि गुफा के बाहर तो कच्ची बर्फ ही सर्वत्र फैली हुई है।

इस निर्जन स्थान में दूर-दूर तक एक भी जीव जन्तु दृष्टिगोचर नहीं होता। पुराण कथा के अनुसार, जब भगवान शंकर पार्वतीजी को अमर कथा सुना रहे थे तब छुपकर सुन रहे शिवजी के गणों को शाप दिया गया-जिससे उन्हें कबूतरों के रूप में जन्म लेना पड़ा। ऐसी मान्यता है कि अगर सफेद कबूतर दिखाई पड़े। तो यात्रा फलदायी होती है।

स्वामी विवेकानन्दजी को सफेद कबूतरों का दर्शन हुआ था। हमें तो काले कबूतरों का दर्शन हुआ।

अमरनाथ महादेव को चढ़ायी गयी भेंट के तीन हिस्से होते हैं—जिनमें एक हिस्सा मुस्लिम भक्त का भी होता है।

इसके साथ एक ऐसी किंवदन्ती भी जुड़ी है कि हातम मल्लिक नाम का एक मुस्लिम व्यक्ति पशु चराया करता था। एक दिन अपने खोये हुए पशु की खोज में वह इस गुफा में आ पहुँचा। महादेवजी के साक्षात्कार की बात उसने सर्वप्रथम गणेशपुरा मार्तण्ड क्षेत्र के दो पंडितों को बतायी। आशन मल्लिक उसी हातम मल्लिक की नवमी या दसवीं पीढ़ी का वारिस माना जाता है।

अमरनाथ महादेव के चढ़ावे को तीन हिस्से होते हैं। एक हातम मल्लिक के वंशज को मिलता है, दूसरा छड़ीवाले महंत को और तीसरा मार्तण्ड गणेशपुरा के ब्राह्मणों को।

एक अन्य गाथा के अनुसार, इस्लामी शासन काल में हिन्दुओं ने कश्मीर से पलायन किया। तब एक लम्बे अरसे तक यह स्थान श्रद्धालुओं के लिए अज्ञात हो रहा। श्री भट्ट नामक एक त्यागी अनुभवी वैद्यराज ने तत्कालीन बादशाह की असह्य बीमारी को दूर कर उन्हें पुनर्जन्म दिया। उस समय बादशाह के अति आग्रह के बावजूद भी कोई ईनाम लेने से इन्कार करने के बाद उन्होंने हिन्दुओं को फिर से इस घाटी में जाने देने की अनुमति मांगी थी।

आभार से कृतकृत्य बादशाह आबदीन ने सहर्ष इस प्रार्थना को स्वीकृति दे दी। इसी कारण से इस मुस्लिम सज्जन के वंशज शिवजी के चढ़ावा का एक भाग ग्रहण करते आये हैं—ऐसी मान्यता है।

खैर, शिवजी को चढ़ाई गयी भेंट का हिन्दू-मुस्लिम प्रेम से भाग करते हैं और हिन्दू यात्रियों को मुस्लिम टेन्ट वाले तथा मुस्लिम कुली प्रेम से बुलाते हैं उनका स्वागत करते हैं, यह तो आँखों से देखी बात है। यूँ देखा जाय तो अमरनाथ की यात्रा स्वंयमेव साम्प्रदायिक सहिष्णुता का पैगाम बन गयी है।

अमरनाथ की गुफा में हमने दो घंटे बिताये—पूजा-अर्चना, स्तोत्र पाठ, ध्यानादि में। उस समय जो अपूर्व शांति मिली—उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। प्रारम्भ में पूजाविधि के लिए धक्के-बाजी होती थी। किन्तु बाद में सेना के जवानों ने व्यवस्था संभाल ली।

परितृप्त होकर हम वापस आये। उसी दिन (३१ तारीख को) हम शाम को शेषनाग वापस आ गये। मार्ग में मुझे भी घोड़े की सवारी करनी पड़ी क्योंकि नयी बूट के चलते अंगूठे में दर्द होने लगा था और एक-एक कदम रखना असह्य था। बाद में पता चला कि अगर ऐसा न करता तो अंगूठे से ही हाथ धो बैठता। जम्मू जाकर पाँच दिन आराम करना पड़ा।

वैष्णव देवी के दर्शन की इच्छा अधूरी ही रही। अंगूठे का नख निकल गया था—परन्तु अंगूठा बच गया—शिवजी की कृपा से।

शेषनाग में पहुँचते ही मानव समुदाय का महामेला देखा! 'छडी मुबारक' के साथ ही हजारों संन्यासी यात्री आ पहुँचे थे। रात में ठहरने की समस्या विकट हो गयी थी। घोड़े के अस्तबल जैसे एक स्थान पर रात बितायी। पहली अगस्त को सुबह वहाँ से रवाना होकर दोपहर को दो बजे तक पहलगाम पहुँच गया। जम्मू के लिए आखिरी बस जा रही थी—उसमें हम बैठ गये।

हर बस के साथ सुरक्षा सैनिक के जवान जा सकें—ऐसी व्यवस्था की गयी थी। परन्तु इस अन्तिम बस में एक भी जवान न था—इसलिए ड्राइवर को तो मजा आ गया। बस, अपनी मर्जी से गाड़ी चलाता और रोकता था।

रामबान में आकर उसने कहा, 'बस आगे नहीं जायेगी,' 'इतने लोगों के रहने की व्यवस्था कैसे हो?' उसे समझाया परन्तु उसने माना नहीं, धमकाने लगा। आखिर मिलीटरी की सहायता से उसे जबर्दस्ती तैयार तो किया—परन्तु स्टीयरिंग व्हील तो उसके हाथ में था न। सारी रात सबने अपने आप भगवान का नाम जपते-जपते बितायी! सुबह पाँच बजे शिवजी की कृपा से हम सकुशल जम्मू पहुँच गये।

'अमरनाथ के दर्शन से क्या लाभ हुआ?' किसी-किसी यात्री के मन में यह प्रश्न उठता है। स्वामी विवेकानन्दजी को इच्छा मृत्यु का वरदान मिला था। कुछ साल पहले रामकृष्ण संघ के एक वरिष्ठ संन्यासी को अमरनाथ में श्रीरामकृष्ण देव का साक्षात दर्शन हुआ था। किन्तु, किसी को ऐसी अनुभूति न हुई तो भी निराश होने की आवश्यकता नहीं है। स्वामी विवेकानन्दजी ने भगिनी निवेदिता को कहा था, 'अभी तुम समझ नहीं रही हो। परन्तु तुमने यात्रा की है और इसका प्रभाव चलता रहेगा। कर्म का फल अवश्य मिलता है। बाद में तुम्हें अधिक समझ आयेगी।' बस, यही अपने लिए आशा और आश्वस्ति की वाणी है।

जय बाबा अमरनाथ की!

शरण तुम्हारी आया हूँ

—मोहन सिंह मनराल
सुरईखेत, अल्मोड़ा (उ० प्र०)

"मुझे अपना लो दयामयी माँ शरण तुम्हारी आया हूँ।
जिस ज्वाला में जला हूँ निशदिन वही चढ़ावा लाया हूँ।।'
शरण तुम्हारी आया हूँ।

"भेंट मेरी चाहे न स्वीकारो, देकर आश्रय मुझे उबारो।
पड़ा रहूँ आश्रय में हरदम, दीन तनय हूँ मुझे पुकारो।
हूँ नादान देखो नादानी, गठरी बाँधे लाया हूँ।।"
शरण तुम्हारी आया हूँ।।१।।

"खाली हाथ न लौटा कोई, 'माँ' के दर पर जो भी आया।
बिन माँगे बस माँ माँ कहते, सुना है उसने सब कुछ पाया।
मैं भूला-भटका आया हूँ, देह नहीं बस छाया हूँ।।"
शरण तुम्हारी आया हूँ।।२।।

"बन्धन अगणित जकड़े तन-मन को, कैसे पिण्ड छुड़ाऊँगा ?
दिया न जो तुमने आश्रय, 'मांगे' मैं तो जड़ हो जाऊँगा।
"मुक्तिबोध" करा दो 'माँ', चेष्टा कर मैं हारा हूँ।।"
शरण तुम्हारी आया हूँ।।३।।

"तुमने बुलाया तभी पास आया, कर दो निर्मल मेरी काया।
जहाँ भी देखूँ, तुम्हें ही देखूँ, समझूँ सब है तुम्हारी माया।
माँ माँ कह अब जीवन बीते, "माँ मैं बहुत सताया हूँ।।"
शरण तुम्हारी आया हूँ।।४।।

ध्यानिष्ठ जीवन की अनिवार्य शर्तें

- स्वामी यतीश्वरानन्द
अनुवादक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द

हमारा प्रस्तुत कार्य—

सर्वप्रथम हमारे लिए आवश्यक है कि आध्यात्मिक आदर्श स्पष्ट रूप से हमारे समक्ष हो। सांख्य नामक पुरातन दर्शन प्रणाली के अनुसार केवल दो मूल तत्त्व हैं: पुरुष अथवा शुद्ध चैतन्य स्वरूप आत्मा तथा प्रकृति। वेदान्त के अनुसार मानव का चैतन्य तत्त्व आत्मा है तथा सभी आत्माएँ अनन्त, सर्वव्यापी परमात्मा या ब्रह्म की अंश हैं। अतः वेदान्त के अनुसार आत्म-साक्षात्कार का अर्थ भगवद्-साक्षात्कार है। जो लोग आत्मा और आत्माओं की आत्मा, परमात्मा के अस्तित्व में विश्वास करते हैं, उनका लक्ष्य परमात्मा के साथ, स्वयं में तथा सभी प्राणियों में एकत्व स्थापित करना है। सर्वव्यापी परमात्मा का साक्षात्कार हमारे आध्यात्मिक जीवन का लक्ष्य है।

छात्रावस्था में जब हम श्रीरामकृष्ण के महान शिष्यों के पास गये तो उन्होंने हमारे सम्मुख आत्म-साक्षात्कार का आदर्श प्रस्तुत किया। लेकिन आत्म-साक्षात्कार से उनका अर्थ किसी वस्तु का निराकरण नहीं था। उन्होंने हमें स्पष्ट रूप से कहा कि जितना ही व्यक्ति अपनी उच्चतर आत्मा के निकट जाता है, उतना ही वह परमात्मा का तथा उसकी सभी में अभिव्यक्ति का अनुभव करता है। और तब व्यक्ति परमात्मा की सभी में सेवा करना चाहता है। लेकिन इसके पहले व्यक्ति को प्रार्थना और उपासना की सहायता से आध्यात्मिक पथ का अनुसरण करने का प्रयत्न करना चाहिए तथा अपनी आत्मा तथा सर्वान्तर्यामी परमात्मा के स्वरूप की स्पष्ट धारणा प्राप्त करनी चाहिए।

अब, जब यह लक्ष्य है, तो प्रश्न उठता है: हम कौन-सा मार्ग चुनें और इस विषय में भी उन्होंने हमारे सम्मुख मोक्ष और सेवा की द्विविध आदर्श प्रस्तुत किया। कर्म और उपासना साथ-साथ किये जाने चाहिए: कर्म को सर्वान्तर्यामी परमात्मा की सेवा के भाव से किया जाना चाहिए। हम विभिन्न प्रकार के कर्म करते हैं लेकिन यह नहीं जानते कि उन्हें कैसे करें, विभिन्न कर्त्तव्यों को कैसे निभायें, विभिन्न कर्मों के द्वारा आध्यात्मिक लाभ कैसे उठाने चाहिए। पहले तो कर्म को कर्तव्य के भाव से करना चाहिए। सभी परिस्थितियों में कर्त्तव्य पालन करना चाहिए। और जब ज्यों-ज्यों हम प्रगति करेंगे, हमें अनुभव होगा कि हमें अपने कर्मों के सभी फलों को सर्व कर्माध्यक्ष परमात्मा को समर्पित करना चाहिए। तब एक समय आता है जब हम प्रश्न करते हैं, हम कर्म क्यों करें? और उत्तर भी भीतर से फूट पड़ता है: भगवद् प्रीत्यर्थ और ऐसा भी समय आ सकता है, जब हम परमात्मसत्ता को हमारे अन्दर-बाहर परिव्याप्त अनुभव करने लगें। तब हम परमात्म-शक्ति के—जो ईश्वरीय शक्ति जगत् कल्याण के लिए कार्यरत रहती है—उसके प्रवाह के माध्यम बन जाते हैं।

आध्यात्मिक पिपासा जगाओ—

जिस प्रकार कर्म सही दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए, उसी प्रकार उपासना भी सही ढंग

मे की जानी चाहिए। हम सभी को किसी-न-किसी प्रकार का कर्म करना पड़ता है। कर्म अनिवार्य है लेकिन कठिनाई यह है कि उपासना ऐच्छिक है। हममें से अधिकांश को किसी प्रकार की उपासना, जप अथवा ध्यान करने की इच्छा नहीं होती, और यही खेद की बात है। यदि हममें आध्यात्मिक क्षुधा होगी तो हम आध्यात्मिक आहार लेना चाहेंगे। हम देह को आहार देते हैं — हमें देह को अच्छा पौष्टिक अन्न प्रदान करना चाहिए। हम अध्ययन द्वारा मन को आहार प्रदान करते हैं- विचार शुभ होने चाहिए। इसी तरह आत्मा को भी आहार देना चाहिए। कैसे? उपासना, जप, ध्यान के अभ्यास द्वारा।

श्रीरामकृष्ण की एक कथा है: एक बच्चा सोने वाला था और उसने कहा: "माँ, जब मुझे भूख लगे तो मुझे जगा देना।" मां ने उत्तर दिया, मुझे यह करना नहीं पड़ेगा। तुम्हारी भूख ही तुम्हें जगा देगी।" (श्रीरामकृष्ण वचनामृत,····· खण्ड···संस्करण १९९२, पृ०···) जीव के विकास के क्रम में एक समय आता है, जब हम आध्यात्मिक क्षुधा का अनुभव करते हैं तथा अनादि-निद्रा से जाग उठते हैं। लेकिन मात्र जागना पर्याप्त नहीं है। हमें कार्य में लग जाना चाहिए। मुझे मां सारदा की एक अपूर्व उक्ति स्मरण हो आयी है "कमरा विभिन्न खाद्य सामग्री से भरा हो, लेकिन उन्हें पकाना होगा। जो पहले पकाता है उसे पहले भोजन भी मिलता है।"

हममें बहुत से आलसी हैं और समय पर पकाना नहीं चाहते, देर से, संध्या को पकाना चाहते हैं। और कुछ इतने आलसी हैं कि भूख से मर जायें तो भी न पकायें। स्वाभाविक ही, वे आध्यात्मिक जीवन में कुछ नहीं पाते और दुःखी होते हैं।

स्वामी ब्रह्मानन्द के उपदेश—

जब हम शान्त बैठकर किसी प्रकार की मानसिक उपासना, जप या ध्यान करते हैं, तो सर्वप्रथम कई बाधाएँ आती हैं। स्वाभाविक है, जैसा स्वामी ब्रह्मानन्द कहा करते थे। यहाँ मैं स्वामी ब्रह्मानन्द के उपदेशों की पुस्तक 'धर्म ध्यान तथा साधना" से कुछ अंश पढ़ता हूँ। वे कहते हैं — "प्रत्येक दिन थोड़ा-बहुत जप-ध्यान करना। किसी भी दिन नागा मत करना, मन बालक के समान चंचल होता है, लगातार इधर-उधर भागता रहता है। उसको बार-बार खींच कर इष्ट के ध्यान में निमग्न करना। इसी तरह दो-तीन वर्ष करने पर देखोगे कि हृदय में अनिर्वचनीय आनन्द आने लगा है, मन भी शान्त हो रहा है। पहले पहल जप-ध्यान नीरस ही लगता है, परन्तु औषधि-सेवन के समान जबरदस्ती मन को इष्ट चिन्तन में निमग्न रखना चाहिए। तब कहीं धीरे-धीरे आनन्द का अनुभव होगा। परीक्षा में सफल होने के लिए लोग कितनी मेहनत करते हैं, पर भगवान् लाभ उसकी तुलना में कहीं अधिक सहज है। प्रशान्त अन्तःकरणपूर्वक सरल भाव से भगवान् को पुकारना चाहिए।

(तृतीय संस्करण, पृ० २१-२२)

जिस शिष्य से उन्होंने ये बातें कहीं, उसने कहा: "कभी-कभी घोर निराशा आ जाती है। ऐसा लगता है कि जप करने पर भी जब कुछ अनुभव नहीं हो रहा है, तो सब फिजूल है।" स्वामी ब्रह्मानन्द ने आशा बंधाते हुए कहा कि— "नहीं, नहीं, निराश होने की कोई बात नहीं है। कर्म का फल तो अनिवार्य रूप से मिलता है। जबरदस्ती करो या खूब भक्ति के साथ करो नाम करने से उसका फल होगा ही। कुछ काल नियमित रूप से अभ्यास करो। ध्यान से केवल

मन की ही शान्ति होती है, ऐसी बात नहीं, उससे शारीरिक लाभ भी होता है।

पहले पहल ध्यान करना मानो मन के साथ युद्ध करने के समान है। चंचल मन को धीरे-धीरे स्थिर कर इष्ट के पाद पद्मों में लगाना चाहिए। इस अभ्यास से कुछ समय बाद सिर थोड़ा गरम हो जाता है। इसलिए पहले पहल अधिक ध्यान-धारणा करके मस्तिष्क से ज्यादा परिश्रम लेना ठीक नहीं, वह सब कुछ बहुत ही धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए। कुछ दिन इस तरह नियमित अभ्यास करते रहने से जब ठीक-ठीक ध्यान होने लगेगा, तब दो-चार घण्टे लगातार एक आसन में बैठकर ध्यान धारण करने से भी कोई कष्ट नहीं होगा वरन् गाढ़ी नींद के बाद शरीर और मन जैसे रिफ्रेश्ड (ताजा) हो जाते हैं, उसी प्रकार का अनुभव होगा, और हृदय में एक आनन्द का प्रवाह बहता रहेगा।

शरीर के साथ मन का बहुत ही निकट का सम्बन्ध है। खान-पान के दोष के कारण स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और फलस्वरूप ध्यान-धारणा का अभ्यास भी सम्भव नहीं हो पाता। तभी तो खान-पान के सम्बन्ध में इतने आचार-विचार हैं।...

ध्यान करना क्या सहज बात है? किसी दिन थोड़ा अधिक खा लेने से मन एकाग्र नहीं हो पाता। काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि रिपुओं को दबाकर रखना पड़ता है, तब कहीं ध्यान करना सम्भव होता है। इन फिल्मों में से एक के भी सिर उठाने पर ध्यान नहीं हो पायेगा।...

ध्यान किये बिना मन स्थिर नहीं होता और मन स्थिर न होने से ध्यान नहीं होता। मन स्थिर होने पर ध्यान करेंगे, ऐसा सोचने से ध्यान करना फिर कभी होगा ही नहीं। दोनों एक साथ करने होंगे। ध्यान के समय ऐसा सोचना कि सब मिथ्या हैं। इस तरह चिन्तन करते-करते क्रमशः मन में सद्भावनाओं के इम्प्रेशन (संस्कार) पड़ेंगे। असद्भावनाओं को जैसे-जैसे मन से निकालोगे, वैसे-वैसे उसमें सद्भावनाएँ आती जायेंगी।...

यदि भगवान्-लाभ करना चाहते हो तो धैर्य धारण कर साधना करते जाओ। समय अपने पर सब होगा।" (धर्म ध्यान और साधना, तृतीय संस्करण १९९२, पृ० २२, २३, २४)।

परमात्मा का साक्षात्कार होने पर सिद्ध पुरुष शान्ति और आनन्द की उपलब्धि करता है और इस शान्ति और आनन्द का अपने सह मानवों में वितरण करता है। स्वामी ब्रह्मानन्द ने इस आदर्श को तथा उसकी प्राप्ति के लिए अनुकरणीय साधना पद्धति को भी हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है।

प्रारम्भिक अवस्थाएँ–

जैसा मैंने कहा, शान्त बैठने का प्रयत्न करने पर मन में कई प्रकार के विक्षेप पैदा होते हैं। कभी-कभी जब तुम ध्यान नहीं कर रहे होते, तब तुम्हें कुछ शान्ति का अनुभव होता हो; लेकिन ध्यान में बैठते ही मन चंचल हो उठता है। इतना ही नहीं, देह में पीड़ा होने लगती है, इन्द्रियाँ पुनः उच्छृंखल हो भागने लगती हैं, और मन में असंख्य अनियंत्रित विचार उठने लगते हैं। और जप और ध्यान एक महान संघर्ष से बन जाते हैं। लेकिन इस संघर्ष से गुजरना ही होगा।

सभी धर्मों के योगी-साधक हमारे सम्मुख सर्वप्रथम साधना की आधारभूत न्यूनतम पवित्रता का—देह की पवित्रता, इन्द्रियों की पवित्रता, चित्त की पवित्रता और अहंकार की भी पवित्रता का लक्ष्य रखते हैं। देह रोगग्रस्त हो जिसके कारण उसके विभिन्न अंगों में सामंजस्य न हो, या वे ठीक से काम न करें। हमारी इन्द्रियाँ बहुमुखी हैं तथा सदा इन्द्रिय-विषयों के सम्पर्क में आने के लिए व्यग्र हैं। हमारा मन पूर्वसंस्कारों से

दोलायमान रहता है और फिर हमारे मन में एक दूसरे प्रकार का द्वन्द्व भी है—हम एक प्रकार से सोचते हैं, हमारी भावनाएँ दूसरी दिशा में जाती हैं हमारी इच्छा तीसरी दिशा में जाती है, और ऊपर से हमारा अहंकार दुष्ट हो गया है। अहंकार एक बुद्बुदे के समान है, लेकिन बुद्बुदा अपने आपको बहुत समझता है। वह दूसरे बुद्बुदों को भूल जाता है, वह सागर को भी भूलकर स्वयं बढ़ना चाहता है। परिणाम क्या होता है? बुद्बुदा फूट जाता है। और यह सचमुच अनेक मानवों के साथ घटता है।

अब हमारे समक्ष उपस्थित इन विभिन्न कठिनाईयों से डरने की आवश्यकता नहीं है। भगवद्गीता में अर्जुन भगवान् से शिकायत करते हुए कहता है: "आप आत्म संयम की, आत्म-साक्षात्कार की बात कहते हैं। लेकिन मेरा मन बहुत चंचल है। मैं उसे नियंत्रित नहीं कर सकता।" गुरु ने शिष्य की कठिनाई को पहचाना और बहुत सहानुभूति एवं प्रेम के साथ कहा: "हाँ तुम्हारा कहना सत्य है, लेकिन उचित उपायों से, वैराग्य और निरंतर ध्यान के अभ्यास से इस विक्षिप्त मन को, जिसे नियंत्रित करना असंभव प्रतीत होता है, नियंत्रित किया जा सकता है। अन्ततः हम आत्माओं की भी आत्मा, विश्वात्मा, परमात्मा का संस्पर्श प्राप्त करते हैं।

परिस्थितियों की शिकायत मत करो—

सर्वप्रथम तो हम ध्यान दें कि हम अपनी परिस्थितियों के विषय में बहुत अधिक शिकायत करते हैं। वस्तुतः परिस्थितियों की शिकायत करने के बदले हम कुछ करना ही नहीं चाहते। मान लो कि हम परिस्थितियाँ बदल दें तब भी शिकायतें रहेंगी। हम कहीं भी आदर्श परिवेश नहीं पा सकते—ऐसी कोई वस्तु है ही नहीं। तुम यह दलील देते हो: परिस्थितियाँ अनुकूल नहीं हैं, मैं कैसे ध्यान कर सकता हूँ?" क्यों, तुम्हें यहीं ध्यान करना होगा। क्या तुम अत्यधिक कष्टप्रद परिस्थितियों के बीच सोने का प्रयत्न नहीं करते? इसी तरह तुम्हें परिस्थियाँ कैसी भी क्यों न हो, ध्यान के अभ्यास का प्रयत्न करना चाहिए। कैसे? सभी बाह्य विक्षेपों से अपने को अलग करके, जिस प्रकार तुम सोने के पूर्व करते हो। अभ्यास द्वारा यह किया जा सकता है। इसके साथ ही हमारी शारीरिक समस्याएँ हैं। संभवतः शरीर अस्वस्थ हो। कई बार ऐसी शिकायतें सुनी जाती हैं: "ओह, स्वामीजी, जब मैं ध्यान करने बैठता हूँ तो मुझे सिर दर्द होने लगता है।" अरे कुछ लोगों के लिए तो ध्यान ही एक सिर दर्द है। जो हो, स्वस्थ रहने का प्रयत्न करो। भगवान् श्रीकृष्ण गीता के आत्मसंयम योग नामक अध्याय में यही बात कहते हैं: "युक्त आहार, युक्त विहार, युक्त कर्म-प्रचेष्टा और युक्त जागरण-निद्रा वाले व्यक्ति के लिए योगासान और दुःखनाशक होता है।" (भगवद्गीता, ६ : १७)। अतियों को त्याग कर मध्यम मार्ग का अवलंबन करना चाहिए। इससे व्यक्ति को साधन पथ पर अग्रसर होने को शक्ति और उत्साह प्राप्त होता है।

पहले शरीर को साधो—

देह को कुछ हद तक साधने के लिए कुछ साधना की जानी चाहिए। उसके बाद इन्द्रियाँ और मन को भी प्रशिक्षित करना चाहिए। यही नहीं अहंकार को भी प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

देह को कैसे साधोगे? भोजन के विषय में सावधानी बरतो। अत्यधिक मत खाओ और ऐसा भोजन चुनो जो तुमहारे लिए अनुकूल हो तथा

देह की समरसता में सहायक हो। कुछ लोग समझते हैं कि खाना पेट को सबसे अच्छी कसरत है। यही नहीं, पौष्टिक आहार के साथ ही तुम्हें देह के सभी अंगों का विशेषकर पेट का कुछ व्यायाम करना चाहिए जिससे तुम्हारी पाचन क्रिया, आत्मसातकरण तथा मलोत्सर्ग क्रिया अधिक-से-अधिक अच्छी तरह हो सके। ये नियम, प्राथमिक नियम हैं जिनका पालना करना चाहिए। हमारे पुरातन आचार्यों का कथन: "शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्" अर्थात् शरीर धर्म का एक साधन है। उसका ध्यान रखना पहला कर्त्तव्य है। कभी-कभी दुबले लोग मेरे पास आकर कहते हैं: "मैं देह को भूलना चाहता हूँ।" उनका शरीर कैसा है? केवल हाड़-मांस का एक समूह! पहले देह को सबल बनाओ। यदि देह स्वस्थ न हो, तो तुम उसे कभी भी भूल नहीं सकते।

नैतिक जीवन—

यम और नियम में साधक जब तक कुछ मात्रा में प्रतिष्ठित नहीं हो जाता तब तक योगाचार्य पतंजलि आसन के बारे में निर्देश नहीं देना चाहते। साधक को अहिंसक आचरण करना चाहिए, सत्य बोलना चाहिए, निर्लोभी होना चाहिए, यथा संभव ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए और दूसरों पर असहाय की तरह निर्भर नहीं होना चाहिए। इन्हें वे यम कहते हैं। (पातंजल योग सूत्र, २ : ३०) इतना ही पर्याप्त नहीं है। उनका कथन है कि कुछ मात्रा में बाह्य और अन्तरिक पवित्रता होनी चाहिए। संतुष्ट रहने का, परिस्थितियों के साथ यथा संभव सामंजस्य रखने का प्रयत्न करना चाहिए। मन, वचन और काया का त्रिविध संयम रखना चाहिए साथ ही शास्त्रों का अध्ययन तथा आदर्शों को आत्मसात् करना चाहिए। यह भी पर्याप्त नहीं है। अहं केन्द्रित कर्म उचित नहीं हैं। परमात्मा के प्रति, जिसे आगे बढ़ने पर साधक आत्माओं की आत्मा के रूप में पहचानता है, पूर्ण समर्पण का प्रयत्न करना चाहिए। ये सब नियम के अन्तर्गत आते हैं।

स्वामी ब्रह्मानन्द कहा करते थे, "मैं काम को जीतूँगा, मैं क्रोध, लोभ को जीतूँगा" यदि यह तुम्हारा तरीका है, तो तुम उन्हें कभी नहीं जीत सकते। लेकिन यदि तुमे भगवान में मन लगा सको तो वासनाएँ अपने आप चली जायेंगी।" "भगवान् में विश्वास किये बिना नैतिकता में पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित नहीं हुआ जा सकता।" (इंटरनल कम्पेनियम १९७१, पृ० २५५) ईश्वर से उनका अर्थ किसी जगदातीत-सत्ता से नहीं था। प्रारंभ में हम ईश्वर को जगत् की सृष्टि, पालन और संहार कारक शक्ति या सत्ता के रूप में धारणा कर सकते हैं। जैसे-जैसे हम प्रगति करते हैं, हम पाते हैं कि जिसे हम बाह्य शक्ति समझते थे, वह शक्ति ही नहीं है, बल्कि वह एक अन्तर्यामी सत्ता भी है, तथा और आगे बढ़ने पर हम सभी में परमात्मा की सत्ता का अनुभव करने लगते हैं।

मानसिक सन्तुलन स्थापित करो—

कई बार लोग आकर कहते हैं: "स्वामीजी मैं अपने मन सहित सब कुछ भूल जाना चाहता हूँ।" उनका मन कैसा है? स्वामी विवेकानन्द 'मन' शब्द पर श्लेष किया करते थे। मन का अर्थ ४० सेर अथवा ८० पौंड भी है। अतः महान् स्वामी विवेकानन्द अपने पास आने वाले युवकों से पूछा करते थे, "तुम्हारे मन का वजन अस्सी पौंड या चालीस सेर का है या केवल एक छटाक? तुम्हारा मन कैसा है?" मन को विकसित करो! इच्छा शक्ति को बढ़ाओ। विचारों और भावनाओं का विकास करो। उसके बाद ही मन के पार जाने की बात आती है। यह एक कठिन कार्य

है, लेकिन यदि आध्यात्मिक प्रेरणा हो तो सब कुछ आसान हो जाता है। यदि इच्छा हो तो रास्ता भी मिल जाता है।

जब तुम कोई परीक्षा पास करना चाहते थे तो कितना मेहनत करते हो। विशेषकर भारत है, जहाँ प्रत्येक युवक ज्ञान लाभ के लिए प्रयत्न करने के बदले अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए कोई नौकरी पाने को अत्यन्त व्यग्र रहता है। यह इसलिए है कि तुम्हारे सामने एक लक्ष्य है। आध्यात्मिक जीवन में भी यदि हम आध्यात्मिक लक्ष्य को जीवित और प्रज्ज्वलित रखें तो सारी बातें आसान हो जाती हैं। तब सारा परिश्रम सार्थक होगा।

कठोपनिषद् की सुन्दर उपमा का स्मरण करो। उपनिषद् में कहा गया है कि देह एक रथ है, इन्द्रियाँ घोड़ों के समान हैं, मन मानो लगाम है, बुद्धि सारथी सदृश है और आत्मा रथ का स्वामी है।

(आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथ मेवतु।
बुद्धि तू सारथीं विद्धि, मनः प्रग्रह्य वच ॥
इन्द्रियाणि सह्या नाहुः ··कठोपनिष्द् १ : ३ : ३)

यदि रथ के चलते समय उसका पहिया निकल जाय तो क्या वह चल सकेगा ? घोड़े चंचल, उच्छृंखल हो गये हैं। घोड़ों को नियंत्रित करने के लिए लगाम कसकर पकड़नी पड़ेगी। और रथी को सारथी को सजग रहने का निर्देश देना होगा। लेकिन प्रायः होता यह है कि रथ का स्वामी सो जाता है, सारथी नशे में मस्त हो जाता है, लगाम ढीली हो जाती है, और फिर घोड़े अनियंत्रित हो इधर-उधर दौड़ने लगते हैं। सौभाग्य से कोई दुर्घटना नहीं होती। अतः दुर्घटना होने के पूर्व हमें सजग हो जाना चाहिए। रथ का स्वामी सजग रहे। उसे सारथी को सतर्क रहने का आदेश देना चाहिए और मन की सहायता से इन्द्रियों को नियंत्रित कर सही दिशा में परिचालित करना चाहिए। तब रथ ठीक से चल सकेगा।

लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि हममें से कोई भी आध्यात्मिक साधना में तत्काल सफल नहीं हो सकता। देह, मन और इन्द्रियों को समरस बनाये रखने के लिए कुछ अल्पसम प्रगति आवश्यक है; और हमारी क्षुद्र इच्छा के पार्श्व में विद्यमान भगवदिच्छा के संस्पर्श में आने के लिए हमारे अहंकार, हमारे दुष्ट अहंकार का भाव समीचीन होना चाहिए। जब हम सर्वप्रथम देह में उसके बाद मन और इन्द्रियों में समरसता स्थापित करने में कुछ हद तक समर्थ होंगे—स्मरण रहे, कुछ हद तक—और हम आध्यात्मिक आकांक्षा, स्पृष्ट को अपने में पैदा करने में सफल होंगे, तब हम आसन का अभ्यास प्रारंभ कर सकते हैं, जो ध्यान मार्ग का प्रथम सोपान है।

आसन—

याद रखो, यम-नियम का कुछ हद तक अभ्यास करने के बाद ही योगाचार्य पतंजलि हमें किसी आसन विशेष में बैठने का निर्देश देते हैं। हमें अपने लिए कौन से आसन का चुनाव करना चाहिए ? आसन की परिभाषा है : "स्थिर सुखमासनम्" (पातंजल योग-सुत्र २ : ४६) अर्थात् जो स्थिर तथा सुखदायक हो वह आसन है। ऐसा आसन चुनो जिसमें तुम स्थिरतापूर्वक तथा सहज रूप से बैठ सको। कोई पूछ सकता है : "क्या मैं लेट सकता हूँ।" हाँ, तुम लेट सकते हो और उसका आसन के रूप में उपयोग कर सकते हो, लेकिन उसमें एक खतरा है : उसका सामान्यतः निद्रा के साथ संबंध होता है। लेटकर ध्यान का अभ्यास करने पर संभवतः तुम्हारी कोई प्रगति न होगी। तुम्हें अच्छी नींद आ सकती है और उससे तुम्हें ताजगी भले ही मिले, लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से वह तुम्हें मन्द बना देगी। 'आसीनः

संभवात्:।' (ब्रह्म सूत्र, ४ :१७) अर्थात् उपासना बैठी स्थिति में संभव है—यह व्यास का कथन है। बैठना अच्छा है, लेकिन यह ध्यान रखो कि उसमें तनाव न हो तथा तुम्हारी देह और मन में किसी प्रकार का तनाव महसूस न हो। यदि योगासनों का व्यायाम के रूप में अभ्यास करना चाहो तो किसी और समय कर सकते हो। लेकिन जब तुम ध्यान के लिए बैठो तो तुम्हें स्थिर, तथा देह और मन से तनाव रहित होकर बैठना चाहिए।

सब के लिए प्रार्थना—

बैठने के बाद प्रभु का स्मरण करो। वे हमारे लक्ष्य हैं। वे अन्तर्यामी आत्मा हैं। वे अन्दर और बाहर भी हैं। कोई प्रार्थना या स्तोत्र पाठ कर सकते हो। थोड़ा संगीत का आश्रय लो। तुम्हारी देह, मन और इन्द्रियों को आध्यात्मिक स्पन्दनों से स्पन्दित होने दो। उसके बाद परमात्मा को प्रणाम करो। किसी पद विशेष का अनुसरण करने पर आध्यात्मिक जीवन में हठधर्मी होने का महान खतरा रहता है। अतः परमात्मा के साथ ही अपने देश तथा संसार के सभी देशों के महान आचार्यों और सन्तों को प्रणाम करना बहुत अच्छा है। इससे क्या होता है? मन उदार होता है।

आध्यात्मिक जीवन में दूसरा खतरा अत्यन्त स्वार्थपरता का है। मैंने कई बार पाया है कि कम-से-कम आध्यात्मिक जीवन के प्रारंभ में साधक अपने बारे में बहुत अधिक सोचते हैं। वे दूसरों को भूल जाते हैं। इसलिए अपने कल्याण के लिए ही नहीं बल्कि सभी के भले के लिए प्रार्थना करना अच्छा है। "जिस प्रकार तुम अपने लिए शान्ति पवित्रता, ज्ञान चाहते हो, उसी तरह सभी को शान्ति, पवित्रता और ज्ञान के लिए प्रार्थना करो।" सभी परमात्मा की ओर अग्रसर हों; सभी पवित्र हों, सभी मुक्त हों।" ऐसी प्रार्थना मन को उदार बनाती है।

तुम्हें यह देखकर आश्चर्य होगा कि ऐसी प्रार्थना कितनी जल्दी तुम्हारे स्नायुओं को शीतल और मन को शान्त करती है। कुछ हद तक हमारी चेतना को व्यापक करने के अतिरिक्त ऐसी प्रार्थना और प्रणति साधना में बहुत सहायक होते हैं।

श्वास-प्रश्वास का महत्त्व—

अब नियमित श्वास-प्रश्वास का थोड़ा अभ्यास बहुत उपयोगी है। गहरी सांस खींचो और उसे धीरे-धीरे निकालो। श्वास रोकना अथवा नाक बन्द करना आवश्यक नहीं है। केवल नियमित रूप से दोनों नाकों से धीरे-धीरे श्वास अन्दर लो और बाहर निकालो। लेकिन मन को सुझाव दो, मैं पवित्रता, शक्ति और शान्ति को अन्दर ले रहा हूँ।" परमात्मा समग्र शान्ति का स्रोत है। वस्तुतः आध्यात्मिक जीवन में पवित्रता, बल और शान्ति की प्राप्ति की कोई सीमा नहीं है। वे जितने अधिक हों उतना अच्छा है। ईश्वरीय पवित्रता, शक्ति और ईश्वरीय शान्ति से अपने को पूर्ण कर लो। पवित्रता को निःश्वसित करो। सभी के प्रति पवित्रता की तरंगे प्रवाहित करो। सभी के प्रति सहानुभूति सम्पन्न होओ, मैं भी का भाव रखो। तुम्हें यह देखकर आश्चर्य होगा कि इस भाव का विकास करने पर तुम्हारे लिए चेतना के उच्च स्तर पर आरोहण करना कितना आसान हो जाता है क्योंकि इस भाव में रहने पर विषयों से इन्द्रियों को पृथक करना आसान हो जाता है।

इच्छाओं का आध्यात्मिकरण—

इन्द्रियाँ बाह्य जगत् के संस्पर्श में आना चाहती हैं। इन्द्रियों को संयत करो, उन्हें अन्तर्मुखी बनाओ, जैसे औपनिषदिक ऋषियों ने किया था। इन्द्रियों को क्रियाओं को आध्यात्मिक दिशा प्रदान करो। जैसे कि वैदिक प्रार्थना है: "हे देव, हम

कर्णों से शुभ श्रवण करें, हम अपने नेत्रों से शुभ का दर्शन करें।" (ऋग्वेद १ : ८९.८)। शुभ सुनो, शुभ बोलो, देखो, इन्द्रियों को शुभ दिशा प्रदान करो। उनको आध्यात्मिक बनाओ।

अब सदा उच्छृंखल रहनेवाले मन को लो। मन को शान्त कैसे करें? नाना प्रकार की इच्छाएँ और वासनाएं मन के लिए समस्याएं पैदा करता हैं। एक आध्यात्मिक मनोभाव का, कुछ व्यापक चेतना के भाव का विकास करने का प्रयत्न करो। सोचो कि ये सारे विक्षेप मिथ्या और स्वप्न सदृश हैं। स्वयं से कहो: "काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और ईर्ष्या से बिल्कुल डरो मत।" उनको आध्यात्मिक दिशा प्रदान करो। भगवान् से मिलन की कामना करो। अपने क्रोध से क्रोध करो, लोगों से नहीं, बल्कि तुम्हारी राह की बाधाओं के प्रति क्रोध करो। परमात्मा के लिए लोभ करो, जो महत्तम संपद है। यदि तुम गर्व करना चाहो, तो यह सोचकर गर्व करो कि तुम प्रभु की सन्तान हो, इत्यादि। ऐसा करने पर हमारी सभी इच्छाओं को एक आध्यात्मिक दिशा प्राप्त होती है। वे फिर हम तंग नहीं करतीं, यही नहीं, वे आध्यात्मिक जीवन में हमारी सहायक हो जाती हैं।

कुछ लोगों में एक भ्रान्त धारणा फैली हुई है। कुछ छिछले मनोवैज्ञानिक साधकों से कहते हैं, "तुम सभी अपनी भावनाओं का दमन और विरोध कर रहे हो।" हम ऐसी कोई चीज नहीं करते। हम अपने मन और इन्द्रियों की शक्ति को संचित करना चाहते हैं। हम इस शक्ति को आध्यात्मिक दिशा प्रदान करना चाहते हैं। हम भगवान् के गुण गान करना चाहते हैं, हम भगवान् के रूप का ध्यान करना चाहते हैं। हम इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करना चाहते हैं, जिससे साधक के जीवन में ऐसा एक समय आये, जब वह अदृश्य को देखने के लिए नये चक्षु, ईश्वरीय वाणी, "स्वर्ग का संगीत" सुनने के लिए नये कर्ण प्राप्त कर सके तथा इस चिरन्तन हो रही घटना का आनन्द ले सके। भगवान् के साथ खेला जा सकता है, लेकिन यह केवल मार्ग की बातें हैं। हमें और आगे जाना है।

परमात्मा का मन्दिर—

पूर्वोल्लिखित कठोपनिषद् के प्रसिद्ध रूपक में देह की तुलना रथ से की गयी है। एक दूसरे रूपक में देह को मन्दिर और हृदय को गर्भगृह कहा गया है। यह एक अद्भुत धारणा है। इस मन्दिर में मल भी है और भगवान् भी। इन दोनों का मिलन होना चाहिए। लेकिन यह मन्दिर बहुत विचित्र है। हमारा क्षुद्र स्थूल शरीर हमारे सूक्ष्म शरीर के द्वारा परिव्याप्त है। पुनः सूक्ष्म शरीर जीवात्मा के द्वारा ओतप्रोत और परिव्याप्त है और जीवात्मा परमात्मा का अंश है और हमारी देह, सूक्ष्म शरीर, इन्द्रियों और मन को समरस बनाने में, उनमें सामंजस्य स्थापित करने में हम ज्यों-ज्यों समर्थ होंगे, उतने ही हम अपने भीतर प्रकाशित हो रही परमात्मा ज्योति के प्रति सचेतन होंगे। अतः हृदय के गर्भ मन्दिर में प्रवेश करो, और हृदय को आत्म ज्योति से, जो परमात्मा का एक अंश है—पूर्ण देखो।

ध्यान की विधि—

अगर तुम निराकार ध्यान करना चाहो, तो देह, मन और समस्त संसार को भगवान् में विलीन कर दो। सोचो 'मैं एक छोटा ज्योति पुँज हूँ तथा परमात्मा सर्वत्र प्रकाशित अनन्त ज्योति पुंज हैं।" लेकिन जब तक हमें देहात्म बोध तथा व्यक्तिगत बोध अधिक है, तब तक यह ध्यान नहीं किया जा सकता। अतः अब सोचो कि तुम्हारी आत्मा ने एक पवित्र सूक्ष्म शरीर और एक पवित्र स्थूल शरीर धारण किया है तथा परमात्मा ने

हमारे आराध्य इष्ट देवता का रूप धारण किया है।

अब कल्पना करो : अनन्त परमात्म ज्योति में जो अनन्त प्रेम और आनन्द स्वरूप भी है, भक्त तथा अनन्त ज्योति प्रेम और आनन्द के विग्रह इष्ट देवता विद्यमान हैं। उपर्युक्त मन्त्र का जप करते हुए उनका ध्यान करो।

सर्वप्रथम इष्ट देवता के ज्योतिर्मय आनन्दमय दैवी रूप का ध्यान करो। उसके बाद उनकी अनन्त पवित्रता, अनन्त प्रेम, अनन्त करुणा का चिन्तन करो। अन्त में उनके अनन्त चैतन्य का ध्यान करो जिसमें वे मानो डूबे हुए हैं।

इससे क्या होता है ?

भगवन्नाम का जप करते हुए तथा एक पक्ष से दूसरे पक्ष पर अग्रसर होते हुए परमात्मा का ध्यान करने से एक अपूर्व परिवर्त्तन होता है। जैसा मैंने कहा नैतिक जीवन यापन से हम कुछ समरसता स्थापित करने में सफल होते हैं। लेकिन परमात्मा के ध्यान से स्थापित होने वाली समरसता उच्च प्रकार की होती है। जब हमारे मन और आत्मा में स्वाभाविक रूप से वास्तविक समरसता स्थापित होती है, तब हमें अनुभव होता है कि हम ईश्वरीय-समरसता के संस्पर्श में आ गये हैं। हमारी देह भी विराट देह—विराट पुरुष का अंश है। हमारा मन विराट मन-हिरण्य गर्भ का अंश है। हमारी जीवात्मा विराट आत्मा या ईश्वर का अंश है। ध्यान और साधना करने वाले बहुत से लोग चेतना के इस स्तर की उपलब्धि करते हैं। सही पद्धति से ध्यान और जप करने पर हमें कोई न कोई दिव्य दर्शन या अनुभूति अवश्य होगी। इससे हमारा विश्वास दृढ हो गया तथा ध्यान के मार्ग में हमारा मन दृढ़तापूर्वक लगा रहेगा।

मन ध्यान के विषय से भागना चाहता है। लेकिन नैतिक जीवन यापन कर हमें इन विक्षेपों को कम करने में सक्षम होना चाहिए। यही नहीं, जप और ध्यान द्वारा हम मन को कुछ सामग्री प्रदान करते हैं, अर्थात् जप के लिए भगवन्नाम तथा कल्पना के लिए भगवत् रूप ये मन को केन्द्रित करने में तथा अन्तर्मुखी बनाये रखने में हमारे सहायक होते हैं। हमें भगवान् का चिन्तन प्रेम के साथ करना चाहिए। इष्ट के प्रति हृदय में कुछ प्रेम-भक्ति देने पर जप और ध्यान के मार्ग पर बने रहना आसान हो जाता है।

जप और ध्यान से क्या होता है ? वे मन को व्यस्त रखते हैं, वे उसे अन्तर्मुखी बनाये रखते हैं, भगवन्नाम भगवन्रूप तथा भगवत् प्रेम सहित भाव मन को अन्तर में एकाग्र बनाये रखते हैं। बाह्य विषयों में रूचि की तुलना में जब ध्यान के विषय में हमारी रूचि बढ जाती है, तब ध्यान का विषय हमारे लिए अधिकाधिक सत्य प्रतीत होने लगता है। कम-से-कम कुछ समय के लिए मन परमात्मा का आनन्दमय भगवत रूप का तथा दैवी सद्गुणों का चिन्तन करता है। इसके बाद भगवद् सान्निध्य की अनुभूति होती है। इस स्थिति में बहुत से साधक ईश्वरीय रूप का दर्शन लाभ कर धन्य हो जाते हैं। परमात्मा किसी-न-किसी रूप में प्रकट होता है। वह तब गुरु का रूप धारण करता है।

अन्तर्यामी गुरु—

हमारे आचार्यों का कथन है कि गुरु हमारे भीतर हैं। हम अपने आध्यात्मिक जीवन के प्रारंभ में बाह्य गुरु की सहायता भले ही लें, लेकिन प्रगति होने पर हमें अन्तर्यामी गुरु का पता चलता है तथा हमें उनके चरणों में अपने को समर्पित करना चाहिए। वे शिष्य को आध्यात्मिक अनुभूतियों के निम्नस्तरों से उच्च और उच्चतर स्तरों तक ले जाते हैं। यही बात उन सन्तों में हुई थी, जिनसे हमारी भेंट हुई है। यदि हम अपने

मन को ठीक से साधना जान लें, तो सन्तों की अनुभूतियों को, उनके गीतों को, उनके हृदय के उद्गारों को, उनकी आध्यात्मिक अनुभूतियों की अभिव्यक्तियों को, उनके उपदेशों को "सुन" सकते हैं। ये अनुभूतियाँ सचमुच होती हैं। यदि हम कुछ हद तक आवश्यक शर्तों का पालन करते हुए निष्ठापूर्वक साधन पथ का अनुसरण करें तो निश्चित रूप से आध्यात्मिक फल प्राप्त होंगे।

ईश्वर के प्रति आत्म-समर्पण —

ध्यान का फल अवश्य प्राप्त होगा, लेकिन जप-ध्यान करते समय फल की अत्यधिक चिन्ता नहीं करनी चाहिए। फल अपने आप आयेंगे। फल की अत्यधिक चिन्ता करने से हम साधना ठीक से नहीं कर पायेंगे और यहीं आत्म-समर्पण का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है। योगाचार्य पतंजलि का कथन है: 'समाधि सिद्धि ईश्वर प्रणिधानात्।" (पातंजल योगसूत्र : ४५) अर्थात् ईश्वर-समर्पण से समाधि होती है। अपने को पूरी तरह ईश्वर के प्रति समर्पित कर दो। अपनी साधना के अपने प्रयास से समग्र फलों को परमात्मा के प्रति समर्पित कर दो। अपनी क्षुद्र इच्छा को भगवदिच्छा के साथ संयुक्त करना सीखो। तब एक चमत्कार होगा: बाह्य जगत् में तथा अन्तर जगत् में प्रकाशित हो सदा सत्य परमात्मा सत्ता, अपने समग्र ऐश्वर्य में प्रकट होती है और तब आत्मा और परमात्मा का मिलन होता है। स्वामी विवेकानन्द ने हमें धर्म की एक परिभाषा प्रदान की है: "चिरन्तन जीव और चिरंतन परमात्मा का चिरन्तन सम्बन्ध" (विवेकानन्द साहित्य) धर्म है। लेकिन इसका साक्षात्कार करने के लिए विभिन्न साधनों का एक निष्ठ अभ्यास आवश्यक है।

निश्चित भाव का विकास —

अब आध्यात्मिक जीवन में हमारी स्थिति कहाँ है, इसकी जानकारी का महत्त्वपूर्ण प्रश्न आता है। यह पता लगाओ कि तुम किस भाव से परमात्मा की ओर अग्रसर होगे। हम में से बहुत कम लोग परमात्मा को अपनी आत्मा की भी आत्मा मानकर अग्रसर होने में समर्थ हैं। हम बालक के समान हैं और बालक जिस तरह माता-पिता पर आश्रित रहता है, उसी तरह हम परमात्मा पर आश्रित रहना चाहते हैं। मित्र की, एक जीवन साथी की, एक ऐसे सुहृद् की आवश्यकता है, जो हमें प्रेम करे, जिसे हम अपने प्रेम का, हमारी भावनाओं का केन्द्र बना सकें। अच्छा, भगवान तो हैं। वे असख्य दैवी रूपों तथा सम्बन्धों में अभिव्यक्त हुए हैं। उनमें से किसी एक चुन लो। हिन्दू धर्म के विभिन्न संप्रदायों का अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि भक्त भगवान की स्वामी, माता-पिता अथवा दिव्य बालक के रूप में आराधना से प्रारंभ करता है। कुछ भक्त भगवान् को बालकृष्ण अथवा बालक राम के रूप में प्रेम करना चाहते हैं। अन्य भक्त जगदम्बा का दुर्गा, काली, उमा अथवा कुमारी आदि उनके विभिन्न रूपों में पूजा करते हैं। इन विभिन्न प्रकार की उपासनाओं से हृदय और मन पवित्र होते हैं। जैसा पहले कहा जा चुका है, नैतिक आचरण से प्राप्त पवित्रता पर्याप्त नहीं है। हम एक उच्चतर स्तर की पवित्रता चाहते हैं, एक ऐसी पवित्रता जो देह, मन और इन्द्रियों से ही नहीं, लेकिन आत्मा के अन्तिम बन्धन, क्षुद्र अहंकार से भी आत्मा को पृथक करने में सहायक हो। यह उपर्युक्त उच्चतर प्रकार की उपासना पद्धति से ही संभव है।

सभी में एक आत्मा—

आत्मा और परमात्मा का मिलन हमारा लक्ष्य है। और ज्यों-ज्यों परमात्मा, परमगुरु अपना स्वरूप प्रकट करता है, त्यों-त्यों भक्त यह अनुभव

करता है कि जिस परमात्मा की वह उपासना कर रहा था, वह अन्तर्यामी ही नहीं है, बल्कि सभी में अभिव्यक्त हो रहा है और तब एक नया, पूर्णतर जीवन प्रारंभ होता है। भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं: "योग द्वारा एकाग्र मन तथा सर्वत्र समता दर्शन करने वाला व्यक्ति, समस्त प्राणियों में अपनी आत्मा की और अपनी आत्मा में सभी प्राणियों को देखता है। (भगवद् गीता, ६ : २९) अब भक्त यह अनुभव करता है कि जो आत्मा है, वह बाहर भी है और भगवान् को सर्वत्र अभिव्यक्त देखकर वह सभी में उसकी उपासना करता है।

आत्मनो मोक्षार्थं जगति ताप च—

यहाँ एक बात समझ लेना चाहिए। इस उच्चतर आध्यात्मिक अनुभूति को प्राप्त करने के बहुत ही, साकार ईश्वर की उपासना करते हुए भी इस उच्चतर विश्वजनीन व्यापक दृष्टिकोण का विकास करना चाहिए। ईश्वर को स्वामी और अपने को दास समझकर अग्रसर होते हुए भी मुझे अपने साथियों को नहीं भूल जाना चाहिए। हम सभी परमात्मा के दास हैं। भगवान् को माता या पिता समझने पर हमारे सह-प्राणियों को हमें उन्हीं भगवान् की सन्तानें समझना चाहिए। यदि हम भगवान् को अपनी आत्मा की भी आत्मा समझने का साहस कर सकें, तब हमें याद रहे कि हम सभी परमात्मा के साथ नित्य संबद्ध आत्माएँ हैं और हमारे परमात्मा के संबंध के माध्यम से एक-दूसरे के साथ जुड़ी हुई है। तब हमारे जीवन को एक नयी दिशा प्राप्त होती है। जिन महापुरुषों ने हमें कहा था कि "कर्म और उपासना एक साथ करना चाहिए।" उन्होंने ही हमें यह भी कहा था कि इस आदर्श को अपने सामने रखो: "आत्मा की मुक्ति तथा जगत् कल्याण के लिए" कर्म करो। तुम्हें अपनी आध्यात्मिक मुक्ति अथवा ज्ञान के लिए प्रयत्न करना है। साथ ही दूसरों के कल्याण के लिए भी प्रयास करो। सिद्ध पुरुष ही सभी में ईश्वर का दर्शन कर सकता है तथा उसकी सेवा स्वतःस्फूर्त होती है। लेकिन हम में से जो अभी अज्ञान में पड़े हैं, उन्हें ऐसी तीव्र कल्पना करनी चाहिए कि हम सभी परमात्मा के माध्यम से एक-दूसरे से संयुक्त है और जिस तरह हम अपना हित साधने का प्रयास करते हैं, उसी तरह हमें सभी का कल्याण करने का भी प्रयत्न करना चाहिए।

इस सन्दर्भ में "कर्म और उपासना साथ-साथ होने चाहिए।" उपदेश नया अर्थ धारण कर लेता है। ध्यान में प्रगति करते हुए, आन्तरिक विकास का प्रयास करते हुए हमें अपने परिवार के सदस्यों के लिए ही नहीं बल्कि दूसरों के हित के लिए भी प्रयत्न करना चाहिए। यदि इसका आचरण किया जाता तो इस संसार में कैसी सुन्दर सुव्यवस्था स्थापित हो जाती। यदि प्रत्येक व्यक्ति जैसे अपने लिए सोचता है वैसा दूसरों के लिए सोचता तो हमें अवश्य और अधिक लाभ होता। स्वार्थ पर मनोभाव से हम सामान्यतः सोचते हैं: "मुझे अपने हित से ही मतलब है।" लेकिन ऋषि दृष्टिकोण के उदार होने पर हमें अनुभव होता है कि हम एक वृहतर पूर्ण-सत्ता के अंश हैं और तब हमें सभी के साथ महान आत्मीयता और निकटता का बोध होता है। और जब प्रत्येक व्यक्ति "कर्म और उपासना" के आदर्श को इस दृष्टिकोण से व्यावहारिक जगत् में कार्य रूप में परिणत करने का प्रयत्न करेगा, तो हमारा जीवन मधुमय और सफल होगा तथा आध्यात्मिक चेतना उपलब्ध होगी।

साधना व सेवा करते समय हम अहं केन्द्रित न हों। हम अपने समस्त कर्मों के फल परमात्मा को समर्पित कर दें। श्रीरामकृष्ण कहते थे, "यदि हम भगवान् की ओर एक कदम बढ़ेंगे, तो भगवान् हमारी ओर दस कदम आयेंगे। आत्म-जगत् के इस सत्य की अनुभूति करनी चाहिए।

देवलोक

—ब्रह्मलीन स्वामी अपूर्वानन्द
अनुवादक—स्वामी ज्ञानातीतानन्द
रामकृष्ण आश्रम, राजकोट।

: दशम परिच्छेद :

इलाहाबाद में महापुरुषजी और स्वामी विज्ञानानन्द

वाराणसी के श्रीरामकृष्ण अद्वैतआश्रम में स्वामी अद्भुतानन्द महाराज की स्मृति में महावीर मन्दिर और स्मृति-भवन एवं नये ठाकुर घर प्रतिष्ठा के लिए विशेष अनुरोध किए जाने पर महापुरुषजी १९२३ ई० में जनवरी के अन्तिम भाग में काशी का यात्रा की। उस यात्रा में उन्होंने दया करके मुझको भी साथ में लिया था, उससे मुझे ऐसे नये अनुभव हुए जो सारे संघ-जीवन में विशेष कल्याणप्रद हुए थे। महापुरुष के काशी जाने की बात सुनकर इलाहाबाद से स्वामी विज्ञानानन्द महाराज बेलुड़ मठ आकर महापुरुषजी को काशी से इलाहाबाद आश्रम में जाने के लिए विशेष अनुरोध किया। विज्ञान महाराज की आन्तरिकता से महापुरुषजी प्रसन्न हुए एवं एक शुभ दिन में महापुरुषजी को लेकर विज्ञान महाराज ने इलाहाबाद की यात्रा की। वे दोनों द्वितीय श्रेणी के यात्री, और मैं उससे संलग्न Servant Class में। रात्रि के बीच भी मैंने कई बार उनलोगों की खोज खबर लिया था।

इलाहाबाद आश्रम में महापुरुषजी तीन-चार दिन मात्र थे। इन्हीं कुछ दिनों में बहुत से भक्त उनके दर्शन और उनके मुख से धर्म प्रसंग सुनकर धन्य हुए थे। उन्होंने दस-बारह भक्तों को दीक्षा भी दिया था। तीर्थराज प्रयाग, महापुरुषजी के बहुत दिनों का तपस्या का स्थान था। एक दिन बातचीत में उन्होंने झाँसी में तप की कहानी भी बाताया था। इलाहाबाद में रहते समय विज्ञान महाराज ने महापुरुषजी की आक्लान्त सेवा की थी एवं इस सेवा के माध्यम से महापुरुषजी के प्रति उनकी श्रद्धा, प्रेम एवं आनुगत्य कितना गंभीर था उसका प्रमाण मुझे मिला था। वे दीन सेवक की तरह प्रातःकाल से रात्रि पर्यन्त सर्वक्षण महापुरुषजी की सुख-सुविधा प्रदान करने में तत्पर रहते थे। महापुरुषजी को खिला कर फिर स्वयं खाते थे। महापुरुषजी जितना कहते 'पेमन, तुम भी खाने बैठो' उस पर हरि प्रसन्न महाराज विनीत भाव से कहते, 'नहीं, महाराज, आपका भोजन हो।' महापुरुषजी खाकर विश्राम करने जाते तब हरि प्रसन्न महाराज खाने जाते एवं जल्दी-जल्दी खाकर आते एवं महापुरुषजी के दरवाजे पर पहरा देने बैठ जाते। जिससे कोई भक्त आकर उनके विश्राम में विघ्न न पहुँचाए। यह देख कर मैं विशेष लज्जित होकर उनको बोला : 'मैं बैठूँगा महाराज! आप जाकर थोड़ा विश्राम करिए।' इस पर वे खूब दीन भाव से कहते; 'नहीं भाई, मैं उनका इस सेवा का सुयोग छोड़ना नहीं चाहता। ऐसे ही वे अपनी कोई सेवा नहीं करने देते, इसके अतिरिक्त यहाँ उनको कोई असुविधा न हो यह मैं ही देखूँगा।' फिर भी मेरे बार-बार कहने पर मुझको बैठा कर वे थोड़ा विश्राम करने जाते। महापुरुषजी के सुख-सुविधा के लिए वे सब समय सतर्क प्रहरी की तरह रहते। मैं विज्ञान

महाराज की सेवा एवं आनुगत्य देख कर आश्चर्य-चकित रह गया।

त्रिवेणी संगम में पूजा निवेदन—विज्ञान महाराज को दिव्य दर्शन :

एक दिन प्रातःकाल विज्ञान महाराज महापुरुषजी एवं हम लोग को नौका से त्रिवेणी संगम ले गये। सभी ने संगम में पूजा की। महापुरुषजी एवं विज्ञान महाराज दोनों ने एक के बाद एक अपना पूजा-अर्घ्य निवेदन के लिए मेरे हाथ में दिया था। मैंने खूब यत्न से प्रत्येक अर्घ्य संगम में निवेदन किया। वे दोनों हाथ जोड़कर तन्मयभाव से खड़े थे। इस प्रकार ठाकुर के दो अन्तर पार्षदों के साथ त्रिवेणी माई को पूजा देने का एक दुर्लभ सुयोग, परम सौभाग्य मुझको प्राप्त हुआ।

हम लोगों ने सुना था कि विज्ञान महाराज एक दिन अन्तिम रात्रि में त्रिवेणी स्नान करने गये थे वहाँ उन्होंने तीन वेणी से युक्त बालिका रूपी एक देवी मूर्ति का दर्शन किया था। इस विषय में पूछने पर उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, हँस कर कहा : 'अरे भाई, सिर गरम होने पर बहुत कुछ दिखाई देता है। उस सब पर विश्वास मत करो।' (वे साधु, ब्रह्मचारी, यहाँ तक कि भक्त को भी 'दादा' कह कर सम्बोधन करते थे।)

काशी अद्वैत आश्रम में महापुरुषजी और स्वामी सारदानन्द महाराज :

इलाहाबाद में साधु-भक्तों को अनेक प्रकार से आनन्द देकर महापुरुषजी १९२३ ई०, २३ जनवरी की शाम को काशी अद्वैत आश्रम में शुभ पदार्पण किया। स्वामी सारदानन्द महाराज भी तब काशी में उपस्थित थे। महापुरुषजी आते ही पहले ठाकुर को प्रणाम करके स्वामी सारदानन्द महाराज के साथ मठ-मिशन और दीक्षादि के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें करने लगे। कुछ समय बाद पूजनीय शरत महाराज टहलने चले गये एवं महापुरुष भी संन्यासियों से परिवृत होकर ऊपर के दो तले के कोने में जिस घर में राजा महाराज रहते थे उस घर में चले गये। साथ-ही-साथ उससे लगा हुआ दक्षिण की ओर का बड़ा घर ठाकुर, श्री श्रीमाँ, स्वामीजी, माँ-काली, महान का पट और वाणलिंग के पूजा व्यवस्था की। तब तक दोनों आश्रमों के बहुत से साधु और भक्त, जो उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे भी प्रसन्न मुख से सबसे कुशल प्रश्न करके सबका प्रणाम ग्रहण करने लगे।

महापुरुष-महाराज के मुख से स्वामीजी की स्मृति

शिवक्षेत्र में शुभ कर्मानुष्ठान के लिए महापुरुषजी का शुभागमन दोनों आश्रमों के साधु-भक्तों को विशेष उत्साहित किया। काशी अद्वैत आश्रम उनके द्वारा तैयार किया हुआ प्रतीक एवं उनका खूब प्रिय स्थान था। उनके आगमन के उपलक्ष में पटना एवं कनखल आदि स्थानों से बहुत से साधु-संत उपस्थित हुए थे। वे साधुओं से परिवृत होकर बीच-बीच में विश्वनाथ, अन्नपूर्णा दर्शन के लिए जाते एवं आश्रम में भजन-कीर्तन और भगवत् प्रसंग आदि से योग देकर सभी का विशेष आनन्द वर्द्धन करते थे। एक दिन रात्रि में भजन हो रहा था--उन्होंने उसमें योग देकर स्वयं ही तबला वादन करने लगे। बाद में जब कीर्त्तन आरम्भ हुआ तब वे साथ-साथ सुर के साथ कीर्त्तन गाने लगे। धर्म प्रसंग आदि में भी वे बीच-बीच में योग देते थे। एक दिन योगी महाराज (स्वामी कैवल्यानन्द) के प्रश्न पूछने पर अद्वैत आश्रम में स्वामीजी की प्रतिकृति प्रतिष्ठा और पूजा प्रवर्तन प्रसंग में वे बोले थे : '१९०२ई० में स्वामीजी द्वारा आदिष्ट होकर काशी में वेदान्त प्रचार के लिए ४ जुलाई को आश्रम

स्थापित करके ठाकुर की पूजा का प्रारम्भ किया। किन्तु दूसरे दिन संध्या को स्वामीजी के देहत्याग का समाचार तार द्वारा पाकर पहले ऐसा लगा कि किसी ने जानबूझ कर या मेरे साथ मजाक करने के लिए यह समाचार दिया है। कारण उसके मात्र आठ-दस दिन पहले ही स्वामीजी ने अपने लिए चौखम्भा से कुछ पुस्तक भेजने के लिए अपने हाथों से चिट्ठी लिखकर भेजा था एवं उस चिट्ठी में उनका शरीर अच्छा है यह भी लिखा था। फिर भी ५ जुलाई की संध्या को यह खत पाकर मन खूब खराब हो गया। उस रात्रि को कुछ भी नहीं खाया—सारा रात रोते-रोते बिताया। दूसरे दिन समाचार पत्र में उनके देहत्याग का समाचार पढ़ मन पूरा टूट गया। सोचा कि मठ जाकर उनको तो देख नही पाऊँगा। स्वामीजी से शून्य मठ तब न जाना ही निश्चय करके उनका अन्तिम आदेश यह करने के लिए काशी में ही रह गया एवं दूसरे रथ यात्रा दिन ठाकुर की विशेष पूजा और होमादि करके ठाकुर के पास में स्वामीजी को बैठा कर पूजा करने लगा। स्वामीजी ने मुझको काशी में वेदान्त प्रचार के लिए भेजा था। ठाकुर ही हमलोगों के वेदान्त, ठाकुर ही हमलोगों के अद्वैत। इसीलिए इस आश्रम का नाम रखा है, "श्रीरामकृष्ण अद्वैत-आश्रम।" स्वामीजी क्या थे, यह संसार अभी भी समझ नहीं सका, क्रमशः समझेगा। ठाकुर और स्वामीजी जो एक—ठाकुर है सूत्र और स्वामीजी हैं भाष्य।' दूसरे समय में साधुओं के द्वारा अनुरोध किए जाने पर ठाकुर, माँ, स्वामीजी जो अभिन्न हैं इस सम्बन्ध में महापुरुषजी ने कहा था: 'बुद्धदेव का 'Trinity' (त्रितत्ववाद) "एक तीन, तीनों एक"—बुद्ध, धर्म, संघ एवं ईसाई धर्म एक Trinity—ईश्वर ही पिता, पुत्र और पवित्रात्मा इन तीन भावों का मिलन—इसमें वे खूब विश्वास करते हैं। हमलोगों का भी उसी प्रकार ठाकुर माँ स्वामीजी यह तीन मूर्त्ति एक ही। बुद्ध लोग जैसे "बुद्ध शरणम् गच्छामि, धम्म शरणम् गच्छामि, संघं शरणम् गच्छामि" कह कर Trinity—की पूजा करते हैं, हम भी उसी प्रकार "रामकृष्ण शरणम् गच्छामि, सारदा देवीम् शरणम् गच्छामि, विवेकानन्द शरणम् गच्छामि" कहकर प्रणाम करके इस तीन मूर्त्ति का शरण प्रार्थना करते हैं। एक ही तीन हैं, तीनों एक हैं।' उस दिन वे भावस्थ होकर ठाकुर, श्री श्रीमाँ और स्वामीजी के सम्बन्ध में और भी अनेक बातें कहीं थी।

क्रमशः

हर काम को तीन अवस्थाओं में से गुजरना होता है—उपहास, विरोध और फिर स्वीकृति। जो मनुष्य अपने समय से आगे विचार करता है, लोग उसे निश्चय ही गलत समझते हैं। इसलिए विरोध और अत्याचार हम सहर्ष स्वीकार करते हैं; परन्तु मुझे दृढ़ और पवित्र होना चाहिए और भगवान् में अपरिमित विश्वास रखना चाहिए, तब ये सब लुप्त हो जाएँगे।

स्वामी विवेकानन्द

संसार में जब आया है तो एक स्मृति छोड़कर जा, वरना पेड़-पत्थर भी तो पैदा तथा नष्ट होते रहते हैं।

— स्वामी विवेकानन्द

जीवन की समस्त लयों के अनुकूल

पीयरलेस

दि पीयरलेस जेनरल फाइनैन्स एण्ड इन्वेस्टमेन्ट कं० लिमिटेड
पीयरलेस भवन
३, एसप्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता—७०० ०६९

भारत की बृहत्तम नॉन-बैंकिंग बचत कम्पनी

डाक पंजीयन संख्या - सी एच पी -१४ ८३

विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्दजी की बहुप्रतीक्षित बृहत् जीवनी

युगनायक विवेकानन्द

तीन खण्डों में

स्वामी गम्भीरानन्दजी द्वारा लिखित
स्वामी विवेकानन्दजी की यह मूल बंगला जीवनी
उनका अत्यन्त प्रामाणिक और अन्तर्दृष्टिसम्पन्न
जीवन-चरित मानी जाती है। सर्वदूर समादृत यह ग्रन्थ अब
हिन्दी-भाषी पाठकों को उपलब्ध हुआ है। हिन्दी में
स्वामी विवेकानन्दजी के बृहत्, प्रमाणभूत जीवनी का
अभाव था, जिसकी पूर्ति इस प्रकाशन से अब
हो गई है।

हर खण्ड करीब डमाई ४०० पृष्ठों का है।

हर खण्ड का मूल्य रु. ५०/- *तीन खण्डों का एकत्रित मूल्य रु. १२०/-*

प्रकाशक :

रामकृष्ण मठ

(प्रकाशन विभाग), धन्तोली, नागपुर-४४००१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
शिवशक्ति प्रिन्टर्स, सईदपुर, पटना-४ में मुद्रित।